Master of Arts (Hindi) (DDE)

Semester – II

Paper Code – 20HND22D1

VISHES RACHNAKAR KABIRDAS-II

विशेष रचनाकार कबीरदास –II

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr.* __________

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

ISBN :

Price : Rs. 325/-

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

विषयसूची

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	व्याख्या खण्ड (खंड–क)	
	साखी	4
2.	आलोचना खंड –(ख)	
	1. भक्ति आंदोलन और कबीर	71
	2. निर्गुण मत और कबीर	77
	3. निर्गुण काव्य परम्परा और कबीर	82
	4. मध्यकालीन धर्म–साधना और कबीर	87
	5. कबीर का समय	100
	6. कबीर का जीवन वृत्त	104
	7. कबीर का कृतित्व	109
	8. कबीर का समाज दर्शन	116
	9. कबीर का दार्शनिक चिंतन	122
	10. कबीर की भक्ति भावना	128

खंड –(क)
व्याख्या खण्ड

1. साखी

1.1 गुरुदेव कौ अंग

सतगुर सवांन को सगा, सोधी सईं न दाति।
हरिजी सवांन को हितू, हरिजन सईं न जाति।।1।।
बलिहारी गुर आपणैं द्यौं हाड़ी के बार।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार।।2।।
सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार।।3।।
राम नाम के पटतरे, देबे कौ कुछ नाहिं।
क्या ले गुट सन्तोषिए हौंस रही मन नाहिं।।14।।
सतगुर के सदके करूं, दिल अपणी का साछ।
सतगुर हम स्यूं लड़ि पड़ा, महकम मेरा बाछ।।5।।
सतगर लई कमांण करि, बांहण लागा तीर।
एक जु बाह्यां प्रीति सूं, भीतरि रह्या सरीर।।6।।
सतगुर सांवा सूरिवां, सबद जू बाह्या एक।
लागत ही में मिलि गया, पढ़ा कलेजै छेक।।7।।
सतगुर मार्या बाण भरि, धरि करि सुधी मूठि।
अंगि उघाड़े लागिया, गई दवा सं फूंटि।।8।।
हंसै न बोलै उनमनी, चंचल मेल्ह्या मारि।
कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर के हथियार।।9।।
गूंगा हूवा बावला, बहरा हुआ कान।
पाऊं थे पंगुल भया, सतगुर मार्या बाण।।10।।
पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगै थें सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि।।11।।
दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।

पूरा किया बिसाहूणां, बहुरि न आंवौं हट्ट।।12।।
ग्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ।
जब गोबिंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ।।13।।
कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं लूंण।
जाति पांति कुल सब मिटै, नांव धरोगे कौण।।14।।
जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधे अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पड़त।15।।
नां गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव।
दुन्यू बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव।।16।।
चौसठ दीवा जोइ करि, चौदह चन्दा मांहि।
क्या ले गर सन्तोषिए, हौंस रही मन माहि।।
तिहिं घरि किसको चानिर्णी, जिहि घरि गोबिंद नाहिं।।17।।
निस अधियारी कारणें, चौरासी लख चंद।
अति आतुर ऊदै किया, तऊ दिष्टि नहिं मंद।।8।।
भली भई जू गुर मिल्या, नहीं तर होती हाणि।
दीपक दिष्टि पतंग ज्यूं, पड़ता पूरी जांणि।।19।।
माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवे पड़त।
कहै कबीर गुर ग्यान थै, एक आध उबरंत।।20।।
सतगुर बपुरा क्या करे, जे सिषही माहे चूक।
भावै त्यूं प्रमोधि ले, ज्यूं वसि बजाई फूक।।21।।
संसै खाया सकल जुग, संसा किनहुं न खद्ध।
जे बेधे गुर अषिरां, तिनि संसा चुणि चुणि खद्ध।।22।।
चेतनि चौकी बैसि करि, सतगुर दीन्हां धीर।
निरभै होइ निसंक भजि, केवल कहै कबीर।।23।।
सतगुर मिल्या त का भयां, जे मनि पाड़ी भोल।
पासि बिनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल।।24।।
बूड़े थे परि ऊबरे, गुर की लहरि चमंकि।
भरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि।।।25।।
गुरु गोविन्द तौ एक है, दूजा यह आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तो पावै करतार।।26।।
कबीर सतगुर ना मिल्या, रही अधूरी सीप।

स्वांग जती का पहरि करि, घरि घरि मांगै भीण।।27।।
सतगुर सांचा सूरिवां, तातै लोहिं लुहार।
कसणो दे कंचन किया, ताई लिया ततसार।।28।।
थापणि पाई थिति भई, सतगुर दीन्हीं धीर।
कबीर हीरा बणजिया, मानसरोवर तीर।।29।।
निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर।
निपजी मैं साझी घणां, बांटे नहीं कबीर।।30।।
चौपड़ि मांडी चौहटै, अरध उरध बाजार।
कहै कबीरा राम जन, खेलौ संत विचार।।31।।
पासा पकड़ा प्रेम का, सारी किया सरीर।
सतगुर दावा बताइया, खेलै दास कबीर।।32।।
सतगुर हम सूं रीझि करि, एक कह्या प्रसंग।
बरस्या बादल प्रेम का भीजि गया अब अंग।।33।।
कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्या आइ।
अंतरि भीगी आत्मां हरी भई बनराइ।।34।।
पूरे सूं परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि।
निर्मल कीन्हीं आत्मां ताथै सदा हजूरि।।35।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'गुरुदेव को अंग' साखी का प्रथम अंग है, जिसमें कुल 35 दोहे संकलित हैं। इन साखियों में कबीर साहब ने सद्‌गुरु की महिमा की चर्चा की है। वे एक सद्‌गुरु को ईश्वर से भी ऊंचा स्थान देते हैं। कबीर के अनुसार सद्‌गुरु शिष्य के सभी ज्ञानचक्षुओं को परमज्ञान के प्रकाश से भर देता है, जिससे वह सच–झूठ, अच्छा–बुरा और पाप–पुण्य में विभेद कर पाता है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मैं अपने गुरु पर प्रत्येक क्षण सैकड़ों बार न्यौछावर जाता हूं जिसने मुझको बिना विलंब के मनुष्य से देवता कर दिया। तात्पर्य है कि सद्‌गुरु ने मेरी दुर्बलताओं अर्थात विषय–वासनाओं को दूर कर मुझे दिव्यगुणयुक्त बना दिया।

दोहा सं. 3

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्‌गुरु की महिमा, उनका गौरव असीम है, अपरंपार है। उन्होंने मेरा अनंत उपकार किया है। उन्होंने मेरे अनंत ज्ञान–चक्षुओं को खोल दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि सद्‌गुरु ने मेरे अज्ञान को समाप्त करके मुझे दिव्य–ज्ञान प्रदान किया।

दोहा सं. 8

व्याख्या

इस दोहे में कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्‌गुरु ने सदुपदेश रूपी बाण की मूठ को सीधा पकड़कर साधक पर इस तरह से प्रहार किया है कि वह जोरों से उसके नंगे अंगों पर लगा। उसको यह बाण लगते ही दावाग्नि–सी फूट पड़ी। जिसमें सांसारिक विषय–वासनाएं, मोह–माया इत्यादि के आवरण जल गए। इन आवरणों के जलते ही साधक का मन शद्ध सोने की तरह हो जाता है। तदुपरांत उसका परम तत्व रूपी परमात्मा से मिलन हो जाता है।

दोहा सं. 9

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि साधक उन्मनी अवस्था में पहुंचने पर न तो हंसता ही है और न ही किसी से बोलता है, अर्थात वह सांसारिक हास–विलास के उदासीन हो जाता है। उसकी चंचल वृत्तियां गुरु के सदुपदेश रूपी अमोघ–अस्त्र सेना जाती है। इस प्रकार सद्‌गुरु के प्रेम रूपी बाण ने साधक के हृदय को बेध दिया। जिससे उसका मन और प्राण एक हो गए।

दोहा सं. 12

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मेरे गुरु ने मुझे प्रेम–तेल से परिपूर्ण ज्ञान की दीपक एवं कभी न घटने वाली बत्ती दी है। जिसके प्रकाश में संसार रूपी बाजार में अपना क्रय–विक्रय कर लिया है। अब मुझे इस संसार में बार–बार आने की आवश्यकता नहीं है।

दोहा सं. 15

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि अज्ञानी शिष्य और अज्ञानी गुरु की निंदा करते हुए कहते हैं कि जिस शिष्य का गुरु भी अंधा अर्थात अज्ञानी है, वह शिष्य तो पूर्णरूप से अंधा अर्थात अज्ञानी होगा। इस प्रकार एक अंधा जब दूसरे अंधे को धकेलेगा तो अपने साथ दूसरे को भी अंधकार के कुएं में ले डूबेगा।

दोहा सं. 20

व्याख्या

इस साखी में कबीर साहब जी ने माया की तुलना दीपक से तथा मनुष्य की तुलना पतंगे से की है। जिस प्रकार पतंगा दीपक की ओर बार–बार आता है और उस पर मोहवश अपना जीवन न्योछावर कर देता है उसी प्रकार मनुष्य भी विषय–वासनाओं में फंसकर भ्रमवश उसी पर जा गिरता है अर्थात अपना जीवन नष्ट कर लेता है। इसी भाव को अपनी इस साखी में आगे बढ़ाते हुए कबीर साहब कहते हैं कि सद्‌गुरु से ज्ञान प्राप्त करके कोई एकाध विरला व्यक्ति ही माया के बंधन से ऊपर उठ सकता है अर्थात विषय–वासनाओं के चक्कर में नही फंसता।

दोहा सं. 31

व्याख्या

इस दोहे में कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार रूपी चतुर्मुख बाजार के मध्य जीवन रूपी चौपड़ का खेल बिछा दिया गया है और इसके ऊपर और नीचे दोनों ओर चक्रों का बाजार लगा हुआ हैं। जिसे प्रभु–भक्त एवं संत

अत्यंत सोच–विचार कर खेलते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि वे सांसारिक विषय–वासनाओं में न फंसकर प्रभु–भक्ति की ओर उन्मुख होते हैं।

दोहा सं. 33

व्याख्या

इस साखी में कबीर साहब जी ने सद्‌गुरु के प्रसन्न हो जाने की बात कही है, वे कहते हैं कि सद्‌गुरु ने मेरी भक्ति से प्रसन्न होकर मुझे एक ऐसा रहस्य बताया है कि जिससे प्रेम का बादल इस तरह बरसा कि मेरा सारा शरीर भीग गया। कहने का आशय यह है कि मेरी भक्तिभावना से प्रसन्नचित होकर सद्‌गुर ने मेरे ऊपर ज्ञान रूपी बादल को बरसाया जिससे मेरा रोम–रोम भीग गया यानी उस पर जो मोह–माया की धूल जमी थीं, वह साफ हो गई।

1.2 सुमिरण कौ अंग

कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोइ।
राम कहें भला होइगा, नहिं तर भला न होइ।।1।।
कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस।
राम नाँव सतसार है, सब काहू उपदेस।।2।।
तत तिलक तिहूँ लोक मैं, राम नाँव निज सार।
जब कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार।।3।।
भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बचा क्रमना, कबीर सुमिरण सार।।4।।
कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौं काल।।5।।
चिंता तौ हरि नाँव की, और न चिंता दास।।
जे कछु चितवैं राम बिन, सोइ काल कौ पास।।6।।
पंच सँगी पिव पिव करै, छटा जू सुमिरे मन।
मेरा मन सुमिरै राम कुँ, मेरा मन रामहिं आहि।।7।।
मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि।।8।।
तूं तूं करता तूं भया, मुझ मैं रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तू।।9।।
कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाति।
तेल घट्या बाती बुझी, (तब) सोवैगा दिन राति।।10।।
कबीर सूता क्या करे, काहे न देखै जागि।

एक दिनाँ भी सोवणाँ, लंबे पाँव पसारि।।11।।

क्बीर सूता क्या करै, काहे न देखै जागि।

जाका संग तैं बीछुड़ा, ताही के संग लागि।।12।।

कबीर सूता क्या करै उठि न रोवै दुक्ख।

जाका बासा गोर मैं, सो क्यूँ सोवै सुक्ख।।13।।

कबीर सूता क्या करै, गुण गोबिंद के गाड़।

तेरे सिर परि जम खड़ा, खरच कदे का खाइ।।14।।

कबीर सूता क्या करै, सुताँ होइ अकाज।

ब्रह्मा का आसण खिस्या, सुणत काल को गाज।।15।।

केसो कहि कहि कुकिये, नाँ सोइयै असरार।

राति दिवस के कूकणौ, (मत) कबहूँ लगै पुकार।।16।।

जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहीं राम।

ते नर इस संसार में, उपजि षये बेकाम।।17।।

कबीर प्रेम न चाषिया, चषि न लीया साव।

सूने घर का पाहुणा, ज्यूँ आया त्यूँ जाव।।18।।

पहली बुरा कमाइ करि, बाँधी विष की पोट।

कोटि करम फिल पलक मैं, (जब) आया हरि की वोट।।।19।।

कोटि क्रम पेलै पलक मैं, जे रंचक आवै नाउँ।

अनेक जुग जे पुन्नि करै, नहीं राम बिन ठाउँ।।20।।

जिहि हरि जैसा जाणियाँ, तिन कूँ तैसा लाभ।

ओसों प्यास न भाजई, जब लग धसै न आभ।।।21।।

राम पियारा छाड़ि करि, करै आन का जाप।

बेस्वाँ केरा पूत ज्यूँ, कहे कौन तूं बाप।।।22।।

कबीर आपण राम कहि, औरां राम कहाइ।

जिहि मुखि राम न ऊचरे, तिहि मुख फेरि कहाइ।23।।

जैसे माया मन रमै, यूँ जे राम रमाइ।

(तौ) तारा मण्डल छाँड़ि करि, जहाँ के सो तहाँ जाइ24।।

लूटि सके तो लूटियो, राम नाम है लूटि।

पीछे ही पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि।।25।।

लूटि सके तो लूटियो, राम नाम भण्डार।

काल कंठ तै गहैगा, रूधे वसू दुवार।।26।।

लम्बा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।

कहौ संतो क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरिवीवार।।27।।

गुण गाये गुण ना कटै, रटै न राम बियोग।

अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यूँ पावै दुरलभ जोग।28।।

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरता हरि नाम।

सूली ऊपरि नट विद्या, गिरूं तं नाहीं ठाम।।29।।

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत।

हरि साग जिनि बीसरे, छीलर देखि अनंत।।30।।

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ।

फूटा नग ज्यूँ जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ।।31।।

कबीर चित्त चमकिया, चहुँ दिस लागी लाइ।

हरि सुमिरण हाथू घड़ा, बेगे लेहु बुझाइ।।32।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली । 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'सुमिरण को अंग' साखी का दूसरा अंग है, जिस कुल 32 दोहे संकलित हैं। इन साखियों में कबीर साहब जी ने परमतत्व के सुमिरन के महत्व पर बल दिया है। कबीर साहब जी के अनुसार ईश्वर का नाम–स्मरण ही प्रभु–भक्ति का तत्व है।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि भगवान की भक्ति एवं उनका भजन कीर्तनादि उनके नाम–स्मरण के अंतर्गत ही आ जाते हैं। दूसरे नाम अपार दुख प्रदान करने वाले हैं। कहने का तात्पर्य है कि भक्ति के नाम किए जाने वाले आडंबरों से परम तत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। वे तो केवल दुख के कारण हैं। इसलिए कबीर साहब जी कहते हैं कि मन, वाणी और कर्म से प्रभु–स्मरण करना ही सार तत्व है। वही हमें मुक्ति–मार्ग दिखला सकता है।

दोहा सं. 7

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि साधक ने अपनी पांचों इंद्रियों व छठे मन से राम–नाम की रट चातक पक्षी के समान लगा रखी है। राम के नाम की रट लगाते–लगाते साधक साधना के चरमोत्कर्ष पर पहुंच जाता है जहां उसे

राम–नाम रूपी रत्न–धन की प्राप्ति हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह कि जब साधक मन को वश में करके चातक पक्षी के समान स्वाति नक्षत्र से ही जल ग्रहण करने की ठान लेता है तब उसे राम रूपी मोती प्राप्त हो जाता है।

दोहा सं. 9

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि भगवान! तेरा नाम–स्मरण करते–करते मैं तुम्हारा ही स्वरूप हो गया हूं। जिसके फलस्वरूप मुझ में अहंभाव नहीं रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि मेरा पृथक–अस्तित्व रहा ही नहीं। अहं के समाप्त होने के बाद में आप पर बार–बार बलिहारी जाता हूं, क्योंकि मुझे अब सर्वत्र आपका रूप–स्वरूप ही दिखाई देता है।

दोहा सं. 12

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मनुष्य! तू अज्ञानावस्था में सोकर अपने जीवन को क्यों नष्ट कर रहा हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि तू सांसारिक मोहपाश में पड़कर उस परम तत्व को भूल गया है और अपने जीवन को व्यर्थ में ही नष्ट कर रहा है। तू जागकर और ज्ञान प्राप्त करके वास्तविकता को क्यों नहीं जानता। जिस परम तत्व से तू विलग हो गया है, उसी के साथ पुनः क्यों नहीं हो लेता। कहने का तात्पर्य यह है "कि मानव और परमात्मा के मध्य अंश और अंशी का संबंध है लेकिन मोहपाश के कारण वह उसे भूल जाता है, परंतु परम तत्व का स्मरण करके वह अज्ञानावस्था से ज्ञानावर को प्राप्त कर लेता है।

दोहा सं. 19

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मनुष्य! तूने पहले तो अर्थात अपने पूर्वजन्म में अनेक प्रकार के पापों, कुकर्मों को कमाया और सांसारिक विषय–वासनाओं की जहर की गठरी बांध ली। कहने का अभिप्राय यह है कि तुमने सभी पापादि कुकर्म पर्याप्त मात्रा में किए, परंतु जब परम तत्वरूपी परमात्मा का स्मरण किया, उसका आश्रय लिया तब करोड़ों कर्म पल भर में ही तिरोहित हो गए, समाप्त हो गए। अतः प्रभु–सुमिरण में अपने को व्यस्त रख।

दोहा सं. 21

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं जिसने परमात्मा को जैसा जाना है अर्थात जिसने प्रभु के जिस रूप–स्वरूप को जैसी दृ ष्टि से देखा है, उसको वैसा ही लाभ होता है। केवल ओस चाटने से प्यासे व्यक्ति की प्यास नहीं बुझती। उसकी प्यास तो तब तक नहीं बुझती जब तक उसके मुख में पानी नहीं घुसता अर्थात उसे पूर्ण रूप से पानी की प्राप्ति नहीं होती। उसका शमन तो पर्याप्त जल से ही संभव है। कहने का अभिप्राय यह है कि भगवद्–भक्ति के सिवाय अन्य देवताओं की स्तुति अथवा भक्ति ओस के समान है, जो भ्रम की ओर अग्रसर करती है। अतः मनुष्य को जल रूपी परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए।

दोहा सं. 24

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मानव! जिस प्रकार तेरा मन माया में रमा रहता है अर्थात विषय–वासनाओं में

तुम्हारा मन लिप्त रहता है, इनके अतिरिक्त तुम्हें कुछ भी दिखाई नहीं देता। उसी प्रकार यदि तुम राम–नाम स्मरण में अपना मन लगा लो, उसका बार–बार स्मरण करो तो तारामंडल अर्थात आवागमन के बंधन से मुक्ति प्राप्त कर तुम्हें परमात्मा का सान्निध्य मिल जाएगा। कहने का आशय यह है कि जहां परम तत्व रूपी परमात्मा का निवास है, ऐसा करने पर तुम वहीं पहुंच जाओगे।

दोहा सं. 31

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे प्राणी! तू अपने मुख से उस परम तत्व परमात्मा के अमृत रूपी गुणों का गान कर उसे प्रसन्न कर ले। कहने का आशय यह है कि अमृत के समान मीठे वचनों से ही परमात्मा खुश होंगे जिससे तुम्हारा जीवन आनंदमय होगा। कबीर साहब जी आगे कहते हैं कि तू अपना मन प्रभु से उसी प्रकार मिला ले जिस प्रकार जौहरी फूटे हुए नग की संधि मिलाकर जोड़ देता है और वह पुनः अपने अस्तित्व में, अपने रूप–स्वरूप को धारण कर लेता है। अतः हे मानव! तुम्हें मन और मुख को एक करके परमात्मा के अमृत रूपी गुण का ज्ञान करना चाहिए।

1.3 बिरह कौ अंग

रात्यूँ रूंनी बिरहनी, ज्यूँ बंचौ कुंज।
कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगट्या बिरहा पुंज।।1।।

अबर कुंजाँ कुरलियाँ, गरिज भरे सब ताल।
जिनि थे गोविंद बीछुटे, तिनके कौण हवाल।।2।।

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुटे राम , ते दिन मिले न राति।।3।।

बासुरि सुख नाँ रैणि सुख, ना सुख सुपिनै माँहि।
कबीर बिछुट्या राम तूं, ना सुख धूप न छाँह।।4।।

बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैगे आइ।।5।।

बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन कूँ, मनि नाहीं विश्राम।।6।।

बिरहिन ऊठे भी पड़े, दरसन कारनि राम।
मूवाँ पीछे देहुगे, सो दरसन किहिं काम।।7।।

मूवाँ पीछे जिनि मिलै, कहै कबीरा राम।
पाथर घाटा लोह सब, (तब) पारस कौंणे काम।।8।।

अंदे सड़ा न भाजिसी, संदे सो कहियाँ।
के हरि आयां भाजिसी, के हरि ही पासि गयां।।9।।

आइ न सकौ तुझ पै, सकूँ न तूझ बुझाइ।
जियरा यौही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ।।10।।
यहु तन जालौं मसि करूँ, ज्यूँ धूवाँ जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया, करै, बरसि बुझावै अग्गि।।11।।
यहु तन जालै मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणिं करूँ करंक की, लिखि लिखि राम पठाउँ।।12।।
कबीर पीर पिरावनी, पंजर पीड़ न जाइ।
एक ज पीड़ परीति की, रही कलेजा छाइ।।13।।
चोट सताड़ी बिरह की, सब तन जर जर होइ।
मारणहारा जाँणिहै, के जिहिं लागी सोइ।।14।।
कर कमाण सर साँधि करि, खैचि जू माया माँहि।
भीतरि भिद्या सुमार है, जीवै कि जीवै नाँहि।।15।।
जबहूँ माया बैंचि करि, तब मैं पाई जाँणि।
लांगी चोट मरम्म की, गई कलेजा जाँणि।।16।।
जिहि सर मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सच पाऊँ नहीं।।17।।
बिरह भुवंगम तन बसै, मंत्रा न लागै कोइ।
राम बियोगी ना जिवै, जिवै त बीरा होइ।।18।।
बिरह भुवंगम पैसि करि, किया कलेजै घाव।
साधू अंग न मोड़ही, ज्यूँ भावै त्यूँ खाव।।19।।
सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सके, के साई के चित्त।।20।।
बिरहा बिरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलितान।
जिह घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान।।21।।
अंषड़ियाँ झाई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पडूया, राम पुकारि पुकारि।।22।।
इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूँ जीव।
लोही सींचौ तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं पीव।।23।।

नैना नीझर लाइया, रहट बहै निस जाम।
पपीहा ज्यूँ पिव पिव करौं, कबरू मिलहुगे राम।24।।
अंघड़िया प्रेम कसाइयाँ, लोग जाँणे दुखड़ियाँ।
साँई अपणे कारणै, रोइ रोइ रतड़िया।।25।।
सोई आँसू सजणाँ, सोई लोक बिड़ाँहि।
जे लोइण लोंहीं चुवै, तौ जाँणों हेत हियाँहि।।26।।
कबीर हसणाँ दूरि करि, करि रोवण सौं चित्त।
बिन रोयाँ क्यूँ पाइये, प्रेम पियारा मित्त।।27।।
जौ रोऊँ तो बल घटे, हँसौं तो राम रिसाइ।
मनही माँहि बिसूरणा, ज्यूँ घुण काठहि खाइ।।28।।
हंसि हंसि कंत न पाइए, जिनि पाया तिनि रोइ।
जो हाँसेही हरि मिलै, तो नहीं दुहागनि कोइ।।29।।
हाँसी खेलौ हरि मिलै, तौ कौण सहे परसान।
काम क्रोध त्रिष्णा तजै, ताहि मिलैं भगवान।।30।।
पूत पियारो पिता कौं, गौहनि लागा धाइ।
लोभ मिठाई हाथ दे, आपण गया भुलाइ।।31।।
डारि खाँड़ पटकि करि, अंतरि रोस उपाइ।
रोवत रोवत मिलि गया, पिता पियारे जाइ।।32।।
नैना अंतरि आचरूँ, निस दिन निरषौं तोहि।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहि।।33।।
कबीर देखत दिन गया, निस भी देखत जाइ।
बिरहणि पीव पावे नहीं, जियरा तलपै भाइ।।34।।
के बिरहनि कू मींच दे, के आपा दिखलाइ।
आठ पहर का दाझणां, मोपै सह्या न जाइ।।35।।
बिरहणि थी तो क्यूँ रही, जली न पीव के नालि।
फाड़ि फुटोला धज करौं, कामलड़ी पहिराउँ।
रह रहू मुगध गहेलड़ी, प्रेम न लाजूं मारि।।36।।
हौं बिरहा की लाकड़ी, समझि समझि धूंधाउँ।
छूटि पड़ौं यों बिरह तें, जे सारीही जलि जाउँ।37।।

कबीर तन मन यों जल्या, बिरह अगनि सूँ लागि।
मृतक पीड़ न जाँणई, जाँणैगि यहूँ आगि।।38।।
बिरह जलाई मैं जलौं, जलती जल हरि जाउँ।
मो देख्याँ जल हरि जलै, संतौं कहीं बुझाउँ।।39।।
परबति परबति में फिर्या, नैन गंवाये रोइ।
सो बूटी पाऊँ नहीं, जानें जीवनि होइ।।40।।
फाड़ि फुटोला धज करौं, कमललड़ी पहिराउँ।
जिहि जिहिं भेषा हरि मिलें, सोइ सोइ भेष कराउँ141।।
नैन हमारे जलि गये, छिन छिन लोडै तुझ।
नां तूं मिलै न मैं खुसी, ऐसी बेदन मुझ।।42।।
भेला पाया श्रम सों, भौसागर के माँह।
जो छाँडौ तौ डूबिहौ, गहौं त डसिये बाँह।।43।।
रैणा दूर बिछोहिया, रह रे संषम झूरि।
देवलि देवलि धाहड़ी, देखी ऊगै सूरि।।44।।
सुखिया सब संसार है, खाये अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवै।।45।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'बिरह को अंग' साखी का तीसरा अंग है, जिसमें कुल 46 दोहे संकलित हैं। इन साखियों में कबीर साहब जी ने मूल तत्व से विरही आत्मा की वियोगावस्था की मार्मिक दशा का वर्णन किया है। संत कबीर साहब जी ने इन साखियों में आत्मा की तड़प की तुलना एक बिरहणी के वियोग से की है।

दोहा सं. 1

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि बिरहणी आत्मा अपने प्रियतम को प्राप्त करने के लिए उसी प्रकार रोती रहती है जिस प्रकार क्रौंच नामक पक्षी अपने बच्चों के बिछुड़ने पर रोता है। बिरहिणी आत्मा के हृदय में विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी है और उस विरह–वेदना के समूह से वह ज्वाला और भी तीव्र हो गई है।

दोहा सं. 3

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि चकवी रात्रि में चकवे से बिछुड़ने पर पुनः सुबह होने पर मिल जाती है, उसका संयोग प्राप्त कर लेती है परंतु जो व्यक्ति राम से बिछुड़ जाते है, वे न तो दिन में ही और न रात में परमात्मा से मिल पाते

हैं, क्योंकि जीव सांसारिक प्रपंचों में अर्थात मोहपाश के बधन में बंध जाता है। परमात्मा से विलग हो जाता है। अतः इस तरह उसका मिलन संभव नहीं है।

दोहा सं. 7

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि है प्रभु! बिरहन आत्मा इतनी क्षीण हो गई है कि वह आपके दर्शन प्राप्त करने के लिए उठती है और वियोगावस्था में अत्यधिक कमजोर होने के कारण उठकर गिर पड़ती है। अतः हे भगवन ! यदि आपने मरने के पश्चात दर्शन दिए भी तो वे दर्शन किस काम के? अर्थात उन दर्शनों का कोई फायदा नहीं, उनसे कोई लाभ नहीं होने वाला। (तुलनीय–तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करइ का सुधा तड़ागा।–रामचरितमानस)

दोहा सं. 12

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि विरहिणी कहती है कि अब यह अवस्था मेरे लिए असहनीय है अब इस वियोग के कारण मैं अपने शरीर को जलाकर उसकी राख से स्याही बनाऊं और हड्डियों की कलम बनाकर उनसे राम का नाम लिखू और राम–नाम लिखकर उसे उनके पास भेजूं ताकि उन्हें यह पता लगे कि विरहिणी आपके वियोग में तड़प रही है, तब जाकर हो सकता है कि वे मुझे दर्शन दे दें। दोहा सं. 14

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि विरह की पीड़ा सदैव कष्टदायी होती है, दुख पहुंचाने वाली होती है। वह इतनी कसकपूर्ण होती है कि लाखों उपचार करने पर भी वह वेदना दूर नहीं होती लेकिन प्रेम की पीड़ा तो हृदय में पूरी तरह से समा गई है अर्थात उसने कलेजे को पूर्ण रूप से आच्छादित कर लिया है। कहने का भाव यह है कि जब साधक साधना करते–करते अनेक कष्टों को सहन करता है लेकिन जब उसकी (परमात्मा की) झलक उसे मिल जाती है तो वह उसके हृदय में समा जाता है, इस प्रकार वह अनूठे आह्लाद से ओत–प्रोत हो जाता है और आनंदमग्न होकर उसी में लीन रहता है।

दोहा सं. 22

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं की विरह को बुरा नहीं कहना चाहिए क्योंकि विरह ही श्रेष्ठ है वह राजा के समान है। जिसके हृदय में विरह का संचार नहीं होता, विरह उत्पन्न नहीं होता वह सदैव श्मशान के समान होता है अर्थात निर्जीव है, प्रेम रहित है। यहां कबीर साहब जी यह कहना चाहते हैं कि जिस मनुष्य के अंदर विरह या वियोग का भाव नहीं है, वह लगभग निर्जीव है। किसी भी सजीव आत्मा का यह तो प्राथमिक गुण है।

दोहा सं. 25

व्याख्या

कबीर साहब जी जीवात्मा के माध्यम से कहते हैं कि परमात्मा के वियोग के कारण मेरी आंखों ने झरने का रूप धारण कर लिया है अर्थात परमात्मा के वियोग में दिन–रात रोती रहती हूं और पपीहे की तरह 'पिउ–पिउ' की रट लगाती रहती हूं। हे प्रियतम! आप मुझसे कब मिलोगे।

दोहा सं. 30

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार में किसी भी व्यक्ति ने प्रियतम को हंस–हंसकर प्राप्त नहीं किया। कहने का तात्पर्य यह है कि सांसारिक आनंद लेते हुए उस प्रियतम रूपी परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि जिसने भी इसको प्राप्त किया है तो उसने रो–रोकर ही प्राप्त किया है अर्थात उसने विरह की तीव्रानुभूति होने पर ही उस सार तत्व को पाया है। जो हंसकर परमात्मा को प्राप्त करता है अर्थात सांसारिक विषय–वासनाओं द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति जिसे हो जाए तो वह कभी भी दुहागिन (अभागिन या दुर्भाग्य वाली) नहीं हो सकती, सदैव सुहागिन ही रहेगी। अतः इस पद्धति से सभी को ब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त हो जाए। परंतु इसके लिए तो साधना के कष्ट से परिपूर्ण मार्ग को पार करना पड़ेगा।

दोहा सं. 32

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते है कि साधक पिता के लिए प्रिय पुत्र के समान है और वह परमात्मा रूपी पिता को प्राप्त करने के लिए उसके पीछे–पीछे दौड़ता है, तब परम तत्व रूपी परमात्मा साधक के हाथ में मिठाई देकर चला जाता है, जिसके कारण वह स्वयं को भुला देता है। कहने का आशय यह है कि परम तत्व रूपी परमात्मा की साधना करते समय अविद्या (माया) अनेक प्रकार के व्यवधान उत्पन्न करती है, जिससे साधक माया की ओर आकर्षित होकर भक्ति–भावना को त्याग देता है और माया के बंधनों में बंध जाता है, उनमें ही संलिप्त हो जाता है।

दोहा सं. 35

व्याख्या

कबीर साहब जी जीवात्मा के माध्यम से कहते हैं कि प्रियतम रूपी परमात्मा की राह देखते–देखते मेरा दिन बीत गया और रात भी इसी तरह व्यतीत हो गई इस तरह दिन–रात व्यतीत होने पर भी विरहिणी आत्मा को प्रियतम रूपी परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो रही है। परमात्मा की प्राप्ति न होने के कारण उसके प्राण तड़प रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि तत्व रूपी परमात्मा के वियोग में जीवात्मा बेचैन है, लाचार है उसका हृदय वेदना से छटपटा रहा है।

दोहा सं. 37

व्याख्या

कबीर साहब जी जीवात्मा को संबोधित करते हुए कहते हैं कि यदि अन्य आत्माएं वास्तव में विरहिणी थीं तो आज तक जीवित क्यों रही? अर्थात परमात्मा के वियोग में अपने शरीर का त्याग क्यों नहीं कर दिया, अब तुम्हारा जीने का औचित्य ही क्या है? तू अपने प्रियतम के साथ जल क्यों नहीं गई अर्थात तुम्हें अपने प्रियतम के साथ जलकर सती हो जाना चाहिए था। अतः हे शर्मीली, हठीली मुग्धा नायिका अब बस करो और अधिक बातें मत बनाओ क्योंकि इस प्रकार की बातें करके तू प्रेम को भी लज्जित कर रही है।

दोहा सं. 38

व्याख्या–

जीवात्मा कहती है कि मैं अपने प्रियतम रूपी परमात्मा के विरह में लकड़ी के समान जल रही हूं। उस लकड़ी में

रह–रह कर अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है। नमीयुक्त होने के कारण वह लकड़ी धीरे–धीरे जल रही है जिससे पर्याप्त मात्रा में धुंआ निकल रहा है। वह परमात्मा से कातर निवेदन करती हुई कहती है कि हे प्रभु! यदि मैं आपके विरह में पूर्णरूप से जल जाऊं तो विरह के इस असहनीय दुख से मुझे छुटकारा मिल सकता है, अन्यथा मैं विरह–वेदना से इसी तरह जलती रहूंगी। यहां आत्मा की नमी का तात्पर्य मनुष्यात्मा में उपस्थित विभिन्न प्रकार की काम–वासनाओं, लिप्साओं तथा मोह–माया से है।

दोहा सं. 40

व्याख्या–

कबीर साहब जी जीवात्मा के माध्यम से कहते हैं कि जीवात्मा को विरह ने पूर्णरूप से जला दिया है। अपनी इस अवस्था के शमन के लिए वह तालाब के पास जाती है तो तालाब भी विरह–ज्वाला को देखकर स्वयं जलने लगता है। ऐसी अवस्था में जीवात्मा पूछती है कि हे संतो! मैं अपनी इस विरहाग्नि को कहां शांत करूं? कहने का तात्पर्य यह है कि मैं परमात्मा की विरहाग्नि से संतप्त हूं, इसे बुझाने के लिए मुझे कोई उपयुक्त स्थान नहीं मिल रहा है। अतः मैं परमात्मा के विरह में सतत रूप से जल रही हूं।

दोहा सं. 46

व्याख्या–

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार में सभी प्राणी सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते हैं। वे चिंतारहित होकर खाते–पीते और चैन की नींद सोते हैं, लेकिन एक कबीर साहब है जो दुखी आत्मा है, जो परमात्मा के विरह में रात भर जागता–रोता रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सामान्य प्राणी तो सांसारिक आकर्षणों में मग्न रहता है और आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। लेकिन एक सच्चा साधक परमात्मा की प्राप्ति के लिए निरंतर रात–दिन साधना करता रहता है, विरहाग्नि में जलता रहता है। उसके दर्शन न होने पर रात भर जागकर रोता रहता है।

1.4 ग्यान बिरह कौ अंग

दीपक पावक आंणिया, तेल भी आंण्या संग।

तीन्यूं मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ें पतंग।।1।।

मार्या है जे मरेगा, बिन सर थोथी भालि।

पड्या पुकारे बिछ तरि, आजि मरै के काल्हि।।2।।

हिरदा भीतरि दौ बलै, धूवां प्रगट न होइ।

जाके लागी सो लखे, के जिहि लाई सोइ।।3।।

झल उठा झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।

जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूत।।4।।

अगनि जू लागि नीर में, कंदू जलिया झारि।

उतर दषिण के पंडिता, रहे विचारि बिचारि।।5।।

दौं लागी साइर जल्या, पंषी बैठे आइ।

दाधी देह न पालवै, सतगुर गया लगाइ।।6।।

गुर दाधा चेल्या जल्या, बिरहा लागी आगि।
तिणका बपुड़ा ऊबर्या, गलि पूरे के लागि7।।
आहेड़ी दो लाइया, मिरग पुकारै रोइ।
जा बन में क्रीड़ा करी, दाहत है बन सोइ।।8।।
पाणी माहे प्रजली, भई अप्रबल आगि।
बहती सलिता रहि गई, मेछ रहे जल त्यागि।।9।।
समंदर लागी आगि, नदियां जलि कोइला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषां चढ़ि गई।।10।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'ग्यान बिरह कौ अंग' साखी का चौथा अंग है, जिसमें कुल 10 दोहे संकलित हैं। इन साखियों में कबीर साहब जी ने परम तत्व के बारे में ज्ञान हो जाने के ऊपर प्रकाश डाला है। कबीर साहब जी के अनुसार एक बिरही आत्मा तब तक तडपती रहती है जब तक कि उसे यह ज्ञान नहीं हो जाता है कि वह मूल तत्व का ही एक अंश है और अपने मूल तत्व की पुनः प्राप्ति ही उसे सांसारिक आवागमन से मुक्ति दिलाने के लिए एक मात्र विकल्प है।

दोहा सं. 1

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जीवात्मा रूपी दीपक में ज्ञान की ज्योति जलाने के लिए सद्‌गुरु ने उसमें स्नेह रूपी तेल डाल दिया है। कहने का तात्पर्य है कि सद्‌गुरु सदुपदेश देकर साधक–शिष्य को सन्मार्ग की ओर अग्रसर करके उसमें स्नेह रूपी तेल डालकर परमात्मा की ओर उन्मुख कर दिया है जिससे उसके हृदय में परमात्मा के प्रति प्रेम की ज्वाला उत्पन्न हो गई है। इस तरह आत्मा, ज्ञान और स्नेह तीनों मिलकर प्रदीप्त होने पर विषय–वासनाओं रूपी पतंगे उड़–उड़ कर उस अग्नि में पड़ कर नष्ट हो गए अर्थात विषय–वासनाएं समाप्त हो गईं और साधक का चित्त पवित्र, शुद्ध और निर्मल होकर भगवान की भक्ति में लग गया।

दोहा सं. 7

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्‌गुरु ने अनुकंपापूर्वक अपने शिष्य को सन्मार्ग की ओर उन्मुख किया तो गुरु द्वारा उत्पन्न की गई प्रेमाग्नि से साधक शिष्य जल गया। कहने का अभिप्राय है कि परमात्मा के प्रति प्रेम की ज्वाला उसके हृदय में लग गईं इस लौ के उत्पन्न होने पर साधक उसके साक्षात्कार के लिए छटपटाने लगता है, अब विरहाग्नि उसे सतत सालती रहती है, वह तिल–तिल करके जलता रहता है। लेकिन यथाशीघ्र ज्ञानोपलब्धि होने पर तृण–तुल्य जीव विरहाग्नि से ऊपर उठ जाता है, और पूर्ण ब्रह्म के साथ लग जाता है। कहने का तात्पर्य है कि जीवात्मा का परमात्मा से साक्षात्कार हो जाता है, वह पूर्ण रूप से पूर्ण ब्रह्म में विलीन हो जाता है।

दोहा सं. 10

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि संसार रूपी समुद्र में ज्ञान की आग लग गई है और विषय–वासनाएं अर्थात सांसारिक आकर्षणों की नदियां जल कर कोयले के समान हो गई हैं अर्थात ज्ञान की उत्पत्ति होने पर विषय–वासनाएं तिरोहित हो गई हैं। जिसके फलस्वरूप मछली रूपी जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त करने में सफल हो गई है। अतः हे कबीर! तू भी इस स्थिति को देखकर चैतन्य हो जा और साधना के बल पर परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग–प्रशस्त कर ताकि मोक्ष की प्राप्ति की कामना पूरी हो सके।

1.5 परचा कौ अंग

कबीर तेज अनंत का, मानी ऊगी सूरज सेणि।
पति संगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेणि।।1।।
कोतिग दीठा देह बिन, मसि बिना उजास।
साहिब सेवा मांहि है, बेपरवाही दास।।2।।
पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कू सोभा नहीं, देख्याही परवान।।3।।
अगम अगोचर गमि नहीं, तहां जगमगै जोति।
जहाँ कबीरा बंदिगी, 'तहां' पाप पुन्य नहीं छोति।।4।।
हदे छाडि बेहदि गया, हुवा निरंतर बास।
कंवल ज फूल्या फूल बिन, को निरषै निज दास।।5।।
कबीर मन मधुकर भया, रह्या निरंतर बास।
कंवल ज फूल्या जलह बिन, को देखै निज दास।।6।।
अंतर कंवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहां होइ।
मन भवरा तहां लुबधिया, जाणैगा जन कोइ7।।
सायर नाहीं सीप बिन, स्वाति बूंद भी नाहिं।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिषर गढ़ माँहिं।।8।।
घट माँहे औघट लह्या, औघट माँहैं घाट।
कहि कबीर परचा भया, गुरु दिखाई बाट।।9।।
सूर समांणो चंद में, दहूँ किया घर एक।
मनका च्यंता तब भया, कछू पूरबला लेख०।।10।।
हद छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान।
मुनि जन महल न पावई, तहाँ किया विश्राम।11।।

देखौ कर्म कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख।।12।।
पिंजर प्रेमे प्रकासिया, जाग्या जोग अनंत।
संसा खूटा सुख भया, मिल्या पियारा कंत13।।
प्यंजर प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास।
मुख कसतूरी महमहीं, बांणीं फूटी बास।।14।।
मन लागा उन मन्न सों, गगने पहुँचा जाइ।
चंदबिहूणां, चाँदिणाँ, तहाँ अलख निरंजन राइ।।15।।
मन लागा उन मन सों, उन मन मनहि बिलग।
लूँण बिलगा पाणियाँ, पाँणी लूंणा बिलग।।16।।
पाणी ही तें हिम भया, हिम है गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ।।17।।
भली भई जु भै पड्या, गई दशा सब भूलि।
पाला गलि पाँणी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि।।18।।
चौहटै च्यंतामणि चढ़ी, हाडी मारत हाथि।
मीरा मुझसूँ मिहर करि, इब मिलौं न काहू साथि।।19।।
पंषि उडाणी गगन कुँ, प्यंड रह्या परदेस।
पाणी पीया चंच बिन, भूलि गया यहु देस।।20।।
पंषि उड़ानी गगन कुँ, उड़ी चढ़ी असमान।
जिहिं सर मण्डल भेदिया, सो सर लागा कान।।21।।
सुरति समांणो निरति मैं, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यंभ दुवार।।22।।
सुरति समाणो निरति मैं, अजपा माँहै जाप।
लेख समांणां अलेख मैं, यूँ आपा माँहै आप।।23।।
आया था संसार में, देषण की बहु रूप।
कहै कबीरा संत ही, पड़ि गया नजरि अनूप।।24।।
अंक भरे भरि भेटिया, मन मैं नाहीं धीर।
कहै कबीर ते क्यूँ मिलें, जब लग दोइ सरीर।।25।।

सचु पाया सुख ऊपना, अरु दिल दरिया पूरि।
सकल पाप सहजै गये, जब साँई मिल्या हजूरि।।26।।
धरती गगन पवन नहीं होता, नहीं तोया, नहीं तारा।।
तब हरि हरि के जन होते, कहै कबीर बिचारा।।27।।
जा दिन कृतमना हुता, होता हट न पट।
हुता कबीरा राम जन, जिनि देखै औघट घट।।28।।
थिति पाई मन थिर भया, सतगुर करी सहाइ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ।।29।।
हरि संगति सीतल भया, मिटा मोह की ताप।
निस बासुरि सुख निध्य लगा, जब अंतरि प्रकद्या आप।।30।।
तन भीतरि मन मानियाँ, बाहरि कहा न जाइ।
ज्वाला तै फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ।।31।।
तप पाया तन बीसर्या, जब मुनि धरिया ध्यान।
तपनि गई सीतल भया, जब सुनि किया असनान।।32।।
जिनि पाया तिनि सू गह्या गया, रसना लागी स्वादि।
रतन निराला पाईया, जगत ढंढाल्या बादि।।33।।
कबीर दिल स्याबति भया, पाया फल सप्रथ्य।
सायर माँहि ढंढोलता, हीरै पड़ि गया हथ्थ।।34।।
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाँहि।
सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माँहि।।35।।
जा कारणि मैं ढूंढता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न साकौं पाइ।।36।।
जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाई ठौर।
सोई फिर आपण भया, जावू कहता और।।37।।
कबीर देख्या एक अंग, महिमा कही न जाइ।
तेज पुंज पारस धणों, नैनूं रहा समाइ।।38।।
मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुनें, अब उड़ि अनत न जाहि।39।।
गगन गरिजि अमृत चवै, कदली कंवल प्रकास।
तहाँ कबीरा बंदिगी, के कोई निज दास।।40।।

नींव बिहणा देहरा, देह बिहूँणा देव।
कबीर तहाँ बिलंबिया करे अलप की सेव।।41।।
देवल माँ है देहरी, तिल जे हैं बिसतार।
माँहैं पाती माँहिं जल, माहे पुजणहार।।42।।
कबीर कंवल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर।
निस अँधियारी मिटि गई, बाजै अनहद तूर।।43।।
सच पाया सुख ऊपना, अरु दिल दरिया पूरि।
अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
अविगति अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान।।44।।
आकासै मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।
ताका पाँणी को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि।।45।।
सिव सकती विसि कौंण जु जोवै, पछिम दिस उठे धूरि।
जल मैं स्यंघ जु घर करै, मछली चदै खजूरि।46।।
अमृत बरसै हीरा निपजै, घंटा पड़े टकसाल।
कबीर जुलाहा भया पारबू, अगभै उतर्या पार।।47।।
ममिता मेरा क्या करै, प्रेम उघाडी पौलि।
दरसन भया वयाल का, सूल भई सख सौडि।।48।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'परचा कौ अंग' साखी का पांचवां अंग है, जिसमें कुल 48 दोहे संकलित हैं। इनमें आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार का उल्लेख किया गया है। अगम्य, अगोचर, अनादि ब्रह्म का परिचय होने पर हर तरह का अंधकार नष्ट हो जाता है।

दोहा सं. 1

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि उस अपरम्पार तत्व परमात्मा के तेज का आदि–अंत नहीं है, उसकी तेजस्विता ऐसी प्रतीत होती है मानो सूर्यों की श्रेणी उत्पन्न हो गई है। आत्मा रूपी पत्नी ने परमात्मा रूपी पति के साथ जाग कर इस आश्चर्यमय दृश्य को देखा। कहने का अभिप्राय है कि जीवात्मा का सद्गुरु द्वारा मार्गदर्शन करने पर उसे ज्ञान–प्राप्ति हुई, जिसके फलस्वरूप उसका ब्रह्म से साक्षात्कार अर्थात परिचय प्राप्त हुआ।

दोहा सं. 6

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मेरा मन भंवरा बन गया है और वह निरंतर उस कमल पर मंडराता रहता है अर्थात

उसी में लीन हो गया है जिससे वह उत्पन्न हुआ है। ऐसे अनुपम तत्व को कौन देख सकता है? कहने का तात्पर्य है कि सच्चा साधक ही उसके दर्शन कर सकता और उससे प्राप्त होने वाले आनंद की अनुभूति कर सकता है। इस प्रकार साधक का मन रूपी भंवरा सदैव कमल के सम्पुट में रहता है, उसी में निवास करने लगता है।

दोहा सं. 8

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि न तो सागर है और न सीपी ही तथा स्वाति नक्षत्र की बूंद भी नहीं है जो मोती उत्पन्न करने का माध्यम है, उपादान कारण है। इन सबकी अनुपस्थिति में शून्य शिखर में मोतियों की उत्पत्ति होती है। कहने का तात्पर्य है कि जब साधक निरंतर साधना करता है तो साधना करते–करते वह स्वयं ब्रह्ममय हो जाता है और ब्रह्मांध्र से एक–एक बूंद करके अमृतस्राव होता रहता है तब उसके हृदय–सागर में प्रत्येक बूंद मोती बन जाती है अर्थात उसे अपार आनन्दानुभूति होती रहती है।

दोहा सं. 13

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्‌गुरु द्वारा मार्ग दर्शन करने पर मेरे शरीर अर्थात हृदय में परमात्मा के प्रति प्रेम प्रकाशित हो गया तदुपरांत परमात्मा के प्रति योग–साधना जागृत हो गई अर्थात साधक अब ब्रह्म से साक्षात्कार करने के लिए लालायित हो गया और वह निरंतर योग (ध्यान) की ओर प्रवृत्त होने लगा। योग व ध्यान की ओर अग्रसर होने पर उसके सभी संशय समाप्त हो गए अर्थात उसके भ्रमादि विकार नष्ट हो गए एवं प्रिय रूपी परमात्मा के मिलने पर उसे असीम सुख की अनुभूति हुई अर्थात उसका परमात्मा से साक्षात्कार हो गया जिससे विषय–वासनाएं समाप्त हो गई। वह स्वच्छ, निर्मल एवं पावन हो गया।

दोहा सं. 21

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्‌गुरु ने मुझे सदुपदेश रूपी बाण दे दिया है जिसने शून्य एवं मूलाधार के बीच के स्थान को भेद दिया है। जिसमें षट्चक्र इत्यादि शामिल होते हैं। इस लक्ष्य को भेदकर पक्षी रूपी आत्मा शून्य ब्रह्म की ओर उड़ गईं इतना ही नहीं वह उड़ कर ब्रह्मांड में जा पहुंची जहां परमात्मा निवास करते हैं। कहने का तात्पर्य है कि आत्मा–परमात्मा में एकाकार हो गई जिसके परिणामस्वरूप उसे आवागमन के बंधन से छुटकारा मिल गया।

दोहा सं. 24

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मेरा जन्म इस नाम–रूपात्मक संसार में इसलिए हुआ था कि मैं इसके विभिन्न रूपों को देख सकू, उनका भली–भांति उपभोग कर सकूँ, लोकिन सद्‌गुरु ने ऐसा सदुपदेश रूपी बाण मारा जिससे मैं भक्ति–पथ की ओर अग्रसर हुआ और संत बन गया। ऐसी स्थिति में लगातार भक्ति करते हुए, साधनारत रहते हुए मुझे उस अनुपम, अद्वितीय, अनादि परम तत्व परमात्मा के दर्शन इस विभिन्न नाम–रूपात्मक संसार में ही हो गए। कहने का तात्पर्य यह है कि साधना करते हुए इस मोह–माया युक्त संसार का प्रभाव मुझ पर नहीं पड़ा जिसके फलस्वरूप साधना के विभिन्न प्रकार के सोपानों को पार करते हुए अविनाशी ब्रह्म से मेरा साक्षात्कार हो गया, उससे परिचय हो गया।

दोहा सं. 26

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्‌गुरु मार्ग दर्शन करने पर ही मुझे सत्य रूपी ब्रह्म की प्राप्ति हुई जिसके फलस्वरूप अनेक प्रकार के सुख उत्पन्न हुए अर्थात सुखों की प्राप्ति हुईं जिससे मेरा दिल उसी प्रकार सुखों से भर गया जिस प्रकार नदी पानी से भरी रहती है। सत्य ब्रह्म की प्राप्ति पर मेरे सभी पाप सहज रूप से नष्ट हो गए। कहने का अभिप्राय है कि जिस प्रकार नदी का पानी उसमें पड़ने वाले गंदे नाले के पानी का रूप अपने रूप में परिवर्तित कर देता है अर्थात स्वच्छ बना देता है उसी प्रकार मेरे सकल पाप सहज रूप से नष्ट हो गए।

दोहा सं. 32

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सतत साधना द्वारा परम तत्व परमात्मा का ध्यान लगाने के पश्चात उसकी प्राप्ति पर साधक को शरीर की सुध–बुध भी नहीं रही। कहने का तात्पर्य है कि उसने मायाजनित संसार को भुला दिया और प्रभु की भक्ति के द्वारा परमात्मा से साक्षात्कार कर लिया। परमात्मा का ध्यान करते–करते उसका मन शून्य–शिखर में पहुंच कर अमृत रस का पान करने लगा जिससे विषय–विकारों की ज्वाला शांत हो गई और उसका अंतःकरण स्वच्छ, पावन एवं निर्मल व द्वादशवर्णी कंचन जैसा हो गया।

दोहा सं. 35

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जब मेरे अंदर अहं भावना थी तब मेरा परमात्मा से परिचय नहीं हो पाया, लेकिन जब मेरा अहंकार समाप्त हो गया तब से मेरे हृदय में परमात्मा निवास करने लगे और मुझे असीम सत्ता का पूर्ण परिचय मिल गया। इस पर जब मैंने ज्ञान रूपी दीपक लेकर अपने हृदय को देखा ते मेरा समस्त अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट हो गया। यहां 'मैं' तत्व यानी अहं की तुलना अधंकार रूपी अज्ञान से की गई है।

दोहा सं. 40

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्‌गुरु द्वारा मार्गदर्शन करने पर मैं साधना–पथ की ओर अग्रसर हुआ जिसके फलस्वरूप शून्य रूपी गगन में अनहदनाद रूपी बादल गर्जना करने लगे जिससे अमृत की वर्षा होने लगी, तथा सुषुम्ना रूपी बदली से सहस्रदल कमल विकसित हुआ जिससे अद्वितीय प्रकाश पुंज विदीर्ण हो रहा है। साधना की इस अवस्था में पहुंच कर भगवान की भक्ति कबीर या उनका कोई दास अर्थात भक्त ही कर सकता है, दूसरा कोई नहीं। कहने का तात्पर्य है कि साधना–पथ अत्यंत दुष्कर है, इस पर तो कोई बिरला ही चलकर परम तत्व परमात्मा के दर्शन कर सकता है।

दोहा सं. 44

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्‌गुरु द्वारा मार्गदर्शन करने पर जब साधक परम तत्व परमात्मा की प्राप्ति के लिए प्रेम–पूर्वक अपना ध्यान लगाता है तब अगम्य ब्रह्म उसके हृदय में प्रकट हो जाता है और उसे ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। कहने का तात्पर्य है कि साधक योग–ध्यान द्वारा परमात्मा से साक्षात्कार कर लेता है। तदुपरांत परिचय के

बाद उसे अनहदनाद सुनाई देने लगता है और शून्य–गगन से अमृत वर्षा होने लगती है। इस अमृत–वर्षा का पान करके साधक अजर–अमर हो जाता है, उसे आवागमन के बंधनों से मुक्ति मिल जाती है।

दोहा सं. 48

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि परम तत्व परमात्मा के दर्शन होने के उपरांत सांसारिक मोह–मायादि मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं! कहने का आशय है कि उनका मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि सद्‌गुरु के सदुपदेश के कारण उस परम तत्व से प्रेमपूर्वक ध्यान लगाने, साधना करने के बाद अब उसका कोई रहस्य मुझसे छिपा नहीं है। उसका पूर्ण परिचय मुझे मिल गया है। परिचय के बाद सांसारिक विषय–वासना रूपी कांटे भक्ति का रूप धारण करके शरद ऋतु में सुख प्रदान करने वाली रजाई बन गए। कहने का तात्पर्य है कि परमात्मा प्राप्ति के बाद सभी पाप पुण्य में परिवर्तित हो गए और वे अखंड आनंद प्रदान करने वाले बन गए।

1.6 निहकर्मी पतिब्रता कौ अंग

कबीर प्रीतडी तौ तुझ सौं, बहु गुणियाले कंत।
जे हँसि बोलौं और सौं, तौं नील रँगाउँ दंत।।1।।
नैना अंतरि आव तूं, ज्यूँ हौं नैन झंपेउँ।
नाँ हौं देखौं और कू, नाँ तुझ देखन देउँ।।2।।
मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तझको सौंपता, क्या लागै है मेरा।।3।।
कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूं रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ।।4।।
कबीर सीप समंद की, रटै पियास पियास।
संमदहि तिणका बरि गिणै, स्वाति बूँद की आस।।5।।
कबीर सुख को जाइ था, आगै आया दुख।
जाहि सुख घरि आपणै, हम जाण अरु दुख।।6।।
दो जग तो हम अंगिया, यह डर नाहीं मुझ।
भिस्त न मेरे चाहिये, बाझ पियारे तुझ।।7।।
जे वो एके न जाँणियाँ, तो जाण्याँ सब जाँण।
जो वो एक न जाँणियाँ, तो सबहीं जाँण अजाँण।।8।।
कबीर एक न जाँणियाँ, तो बहु जाँण्याँ क्या होइ।
एक तैं सब होत है, सब तैं एक न होइ।।9।।
जब लगि भगति सकामता, तब लग निर्फल सेव।

कहै कबीर वै क्यूं मिलैं, निहकामी निज देव।।10।।
आसा एक जू राम की, दूजी आस निरास।
पाँणी माहै घर करें, ते भी मरै पियास।।11।।
जे मन लागै एक सूँ, तो निरबाल्या जाइ।
तूरा दुइ मुखि बाजणां, न्याइ तमाचे खाइ।।12।।
कबीर कलिजुग आइ करि, कीये बहुतज मीत।
जिन दिल बँधी एक तूं, ते सुखु सोवै नचीत।।13।।
कबीर कुत्ता राम का, मुतिया मेरा नाउँ।
गलै राम की जेवडी, जित खैचे तित जाउँ।।14।।
तो तो करै त बाहुड़ों, दुरि दुरि करै तो जाउँ।
ज्यूँ हरि राखें त्यूँ रहौं, जो देवै सो खाउँ।।15।।
मन प्रतीति न प्रेम रस, नां इस तन मैं ढंग।
क्या जाणौँ उस पवि सू, कैसे रहसी संग।।16।।
उस संम्रथ का दास हौं, कदे न होइ अकाज।
पतिव्रता नाँगी रहै, तो उसही पुरिस को लाज।।17।।
धरि परमेसुर पाहुणा, सुणों सनेही दास।
षट रस भोजन भगति करि, न्यूँ कदे न छाडै पास।।18।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिया गया है। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग' साखी का छठा अंग है, जिसमें कुल 18 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने आत्मा को पत्नी तथा परमात्मा को पति के रूप चित्रित किया है। इन साखियों में कबीर साहब जी ने आत्मा को पति के वियोग में तड़पती पत्नी बताया है जो सदैव पती से मिलने तथा उसके दर्शन करने के लिए व्याकुल रहती है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

कबीर साहब जी जीवात्मा के माध्यम से प्रियतम रूपी परमात्मा को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे प्रियतम! आप मेरे नेत्रों में आकर बस जाओ, उनमें समाहित हो जाओ। तुम मेरे नेत्रों में जैसे ही आओगे मैं तुम्हें अपनी आंखों में बंद कर लूंगी। अपनी आंखों में बंद करने के बाद मैं न तो तुम्हें किसी अन्य की ओर देखने दूंगी और न ही मैं किसी अन्य की तरफ देखूगी अर्थात जीवात्मा परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करके उसमें एकाकार होना चाहती है। कबीर साहब जी यह कहना चाहते हैं कि परमात्मा में मिलने के बाद आत्मा को किसी ओर की तरफ देखने की आवश्यकता ही नहीं है।

दोहा सं. 11

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मानव को परम तत्व से ही कुछ आशा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त किसी अन्य से की गई आशाएं निराशा में बदल जाती हैं। कहने का तात्पर्य है कि परमब्रह्म ही सब प्रकार की इच्छाओं को पूरा करने वाला है, वह कल्पवृक्ष के समान है, उसके सिवाय किसी अन्य देवता से की गई आशाएं निरर्थक हैं। वे मगमरीचिका के समान व्यक्ति को पथभ्रष्ट करती हैं। कबीर साहब जी कहते हैं कि जिसका निवास जल में ही है फिर भी वह प्यासा मरता है। कहने का आशय है कि जीव और ब्रह्म में भेद नहीं है, वह प्रत्येक व्यक्ति के घर–घर में निवास करता है, संसार के कण–कण में विद्यमान है लेकिन जीव माया के वशीभूत होकर उसे नहीं देख पाता, इसी कारण वह अतृप्त है, प्यासा है। अन्य देवताओं से आशा करता है।

दोहा सं. 17

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मैं उस समर्थ परमात्मा का दास हूं जिससे कभी किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती। कहने का तात्पर्य है कि परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वज्ञाता और सर्वोपरि है। उसकी भक्ति, मार्ग प्रशस्त करने वाली है, वह अनिष्टकारी नहीं अपितु मंगलकारी है और यदि उस पुरुष (ब्रह्म) की पतिव्रता स्त्री (आत्मा) नग्न रहती है तो यह उसके लिए लज्जा का विषय है, क्योंकि उसकी इस दयनीय अवस्था को देखकर कहा जाएगा कि भगवान की वधू नग्न है अर्थात इसके लिए परमात्मा को ही लज्जा की अनुभूति होगी किसी और को नहीं।

1.7 चितावणी कौ अंग

कबीर नौबति आपणी, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पटन ए गली, बहुरि न देखै आइ।।1।।
जिनके नौबति बाजती, मैंगल बँधते बारि।
एके हरि के नाँव बिन, गए जन्म सब हारि।।2।।
ढोल दमामा दड़बड़ी, सहनाई संगि भेरि।
औसर चल्या बजाइ करि, है कोइ राखै फेरि।।3।।
सातो सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।
ते मंदिर खाली पड़े, बैसण लागे काग।।4।।
कबीर थोड़ा जीवणा, माड़े बहुत मँडाण।
सबही ऊभा मेल्हि गया, राव रंक सुलितान।।5।।
इक दिन ऐसा होइगा, सब तूं पड़े बिछोइ।।
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होइ।।6।।
कबीर पटल कारिवाँ, पंच चोर दस द्वार।
जन राँणौं गढ़ भेलिसी, सुमिरि लै करतार।।।7।।

कबीर कहा गरबियौ, इस जीवन की आस।
टेसू फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास।।8।।
कबीर कहा गरबियो, देही देखि सुरंग।
बिछड़ियाँ मिलिनौ नहीं, ज्यूँ काँचली भुवंग।।9।।
कबीर कहा गरिबियो, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि पयूँ भ्वै लेटणा, ऊपरि जामैं घास।।10।।
कबीर कहा गरबियो, चाँम लपेटे हड।
हैबर ऊपरि छत्रा सिरि, ते भी देबा खड।।11।।
कबीर कहा गरबियो, काल गहै कर केस।
नां जाँणों कहाँ मारिसी, के घरि के परदेस।।12।।
यहु ऐसा संसार है, जैसा सै बल फुल।
दिन दस के व्योहार को, झूठे रंगि न भूल।।13।।
जाँभण मरण बिचारि करि, कूडे काँम निहारि।
जिनि पंथू तुझ चालणां, सोई पंथ सँवारि।।14।।
बिन रखवाले बहिरा, चिड़ियै खाया खेत।
आधा प्रधा ऊबरै, चेति के तो चेति।।15।।
हाड़ जलै ज्यूँ लाकड़ी, केस जलै ज्यूँ घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास।।16।।
कबीर मंदिर ढहि पड़ा, सेंट भई सैबार।
कोई मंदिर चिणि गया, मिल्या न दूजी बार।।17।।
कबीर देवल ढहि पड़ा, ईट भई सैवार।
करि चेजारा सौ प्रीतिड़ी, ज्यौं ढहै न दूजी बार।।18।।
कबीर मंदिर लाष का, जड़िया हीरै लालि।
दिवस चारि का पेषणां, विनस जाइगा काल्हि।।19।।
कबीर धूलि सकेलि करि, पुड़ी ज बाँधी एह।
दिवस चारि का पेषणा, अंतिषेह का षेह।।20।।
कबीर जे धंधै तौ धूलि, बिन धंधे धूलै नहीं।
ते नर बिनठे मूलि, जिनि धंधे मैं ध्याया नहीं।।21।।

कबीर सुपनै रैनि के, ऊघड़ि आयै नैन।
जीव पड्या बहु लूटि मैं, जागै तो लैण न देण।।22।।
कबीर सुपनै रैनि के, पारस जीय मैं छेक।
जे सोऊँ तो दोइ जणां, जे जागूँ तो एक।।23।।
कबीर इस संसार में, घणै मनिप मतिहींण।
राम नाम जाँणौं नहीं, आये टापी दीन।।24।।
कहा कियौ हम आइ करि, कहा करेंगे जाड़।
इत के भए न उत के, चाले मूल गँवाइ।।25।।
आया अणआया भया, जे बहुरता संसार।
पड़ा भुलावा गफिलाँ, गये कुबंधी हारि।।26।।
कबीर हरि की भगति बिन, धिगि जीमण संसार।
धूवाँ केरा धौलहर, जात न लागै वार।।27।।
जिहि हरि की चोरी करि, गये राम गुण भूलि।
ते बिंधना बागुल रचे, रहे अरध मुखि झूलि।।28।।
माटी मलणि कुंभार की, घड़ी सहै सिरि लात।
इहि औसरि चेत्या नहीं, चूका अबकी घात।।29।।
इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यूँ पाली देह।
राम नाम जाण्या नहीं, अति पड़ी मुख षेह।।30।।
राम नाम जाण्यो नहीं, लानी मोटी षोड़ि।
काया हाँडी काठ की, ना ऊ चढ़े बहोड़ि।।31।।
राम नाम जाण्या नहीं, बात बिनंठी मूलि।
हरत इहाँ ही हारिया, परति पड़ी मुख धूलि।।32।।
राम नाम जाँण्यां नहीं, पल्यो कटक कुटुम्ब।
धंधा ही में मरि गया, बाहर हुई न बंब।।33।।
मानुष जनम दुर्लभ है, देह न बारम्बार।
तरवर थें फल झड़ि पड़ा, बहुरि न लागै डार।।34।।
कबीर हरि की भगति करि, तजि बिषिया रस चोज।
बारबार नहीं पाइए, मानुष जन्म की मौज।।35।।
कबीर यहु तन जात है, सके तो ठाहर लाइ।

के सेवा करि साध की, के गुण गोविंद के गाइ।।36।।

कबीर यह तन जात है, सके तो लेहु बहोड़ि।
नागे हाथूँ ते गए, जिनके लाख करोड़ि।।37।।

यह तनु काचा कुंभ है, चोट चहूँ दिसि खाइ।
एक राम के नाँव बिन, जदि तदि प्रलै जाइ।।38।।

यह तन काचा कुंभ है, लिया फिरै था साथि।
ढबका लागा फुटि गया, कछू न आया हाथि।।39।।

काँची कारी जिनि करै, दिन दिन बधै बियाधि।
राम कबीरै रुचि भई, याही ओषदि साधि।।40।।

कबीर अपने जीवतै, ए दोइ बातें धोइ।
लोग बड़ाई कारण, अछता मूल न खोइ।।41।।

खंभा एक गइंद वोइ, क्यूँ करि बंधिसि बारि।
मानि करै तो पीव नहीं, पीव तौ मानि निवारि।।42।।

दीन गँवाया दुनी सौं, दुनी न चाली साथि कहा
पाइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपणै हाथि।।43।।

यह तन तो सब बन भया, करमा भए कुहाड़ि।
आप आप काटिहैं, कहैं कबीर विचारि।।44।।

कुल खोया कुल ऊबरै, कुल राख्यो कुल जाइ।
राम निकुल कुल भेटि लैं, सब कुल रह्या समाइ।।45।।

दुनिया के धोखे मुवा, चलै जु कुल की काँण।
तब कुल किसका लाजसी, जब ले धर्या मसाँणि।46।।

दुनियाँ भाँडा दुख का, भरी मुँहामुह भूष।
अदया अलह राम की, कुरलै ऊँणी कूष।।47।।

जिहि जेबड़ी जग बंधिया, तूं जिनि बँधै कबीर।
हैसी आटा लूँण ज्यूँ, सोना सँवाँ शरीर।।48।।

कहत सुनत जग जात है, विषै न सूझै काल।
कबीर प्याले प्रेम के, भरि भरि पिवै रसाला।।49।।

कबीर हद के जीव सूँ, हित करि मुखाँ न बोलि

जे लागे बेहद सूँ तिन सूँ अंतर खोलि।।50।।

कबीर केवल राम की, तूं जिनि छाडै ओट।

घण अहरणि बिचि लोह ज्यूँ, घड़ी सहे सिर चोट।।50।।

कबीर केवल राम कहि, सुध गरीबी झालि।

कूड़ बड़ाई बूड़सी, भारी पड़सी काल्हि।।52।।

काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोइम धोइ।

ऊजल हूवा न छूटिए, सुख नींदड़ी न सोह।।53।।

ऊजल कपड़ा पहरि करि, पान सुपारी खाँहि।

एके हरि का नाँव बिन, बाँधे जमपुरि जाँहि।।54।।

तेरा संगी कोइ नहीं, सब स्वारथ बँधी लोइ।

मनि परतीति न ऊपजै, जीव बेसास न होइ।।55।।

माइ बिडाणों बाप बिड़, हम भी मंझि बिड़ाह।

दरिया केरी नाव ज्यूँ, संजोगे मिलियाँह।।56।।

इत प्रधर उत घर, बड़ जण आए हाट।

करम किराणाँ बेचि करि, उठि ज लागे बाट।।57।।

नान्हाँ काती चित दे, महँगे मोलि बिकाइ।

गाहक राजा राम है, और न नेड़ा आइ।।58।।

डागल उपरि दौड़णा, सुख नींदड़ी न सोइ।

पुनै पाए द्यौहणे, ओछी ठौर न खोइ।।59।।

मैं मैं बड़ी बलाइ है, सके तो निकसी भाजि।

कब लग राखौं हे सखी, रूई पलेटी आगि।।60।।

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास।

मेरी पग का पैषड़ा, मेरी गल की पास।।61।।

कबीर नाव जरजरी, कूड़े खवणहार।

हलके हलके तिरि गए, बूड़े तिनि सिर भार।।62।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल. 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'चितावणी कौ अंग' साखी का सातवां अंग है, जिसमें कुल 62 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने संसार की नश्वरता तथा क्षणभंगुरता का सजीव चित्रण करते हुए विषय–वासनाओं का त्याग करके परमात्मा का स्मरण करने की चेतावनी दी है।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जिन मंदिरों में सातों वाद्ययंत्र (झांझ, मृदंग, शंख, शहनाई, बीन, बांसुरी और ढोल) उनके ऐश्वर्य और वैभव का उद्‌घोष करते थे, वहां अब केवल कौओं का बसेरा हो गया है। कहने का तात्पर्य है कि जिन स्थानों पर ऐश्वर्य का प्रत्येक साधन उपलब्ध था और सदैव आनंद छाया रहता था आज वे स्थान खाली पड़े हुए हैं और उन पर कौए बैठने लगे हैं। आशय है कि आज उनके बारंबार रंगारंग कार्यक्रम ही समाप्त नहीं हुए अपितु उनका नामोनिशान तक नहीं रहा।

दोहा सं. 13

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यह संसार सेमर के फूल की तरह सौंदर्य से परिपूर्ण लेकिन सारहीन, तत्वहीन है। जिस प्रकार तोता सेमर की सुंदरता को देखकर उसमें चोंच मारता है, लेकिन उसे कुछ प्राप्त नहीं होता ठीक उसी प्रकार जीव को सांसारिक आकर्षण अपनी ओर खींचते हैं लेकिन अंततः उसे कुछ प्राप्त नहीं होता। यह संसार केवल दस दिन का मेला है इसलिए जीव को भूलकर भी संसार के इन मिथ्या–आकर्षणों में नहीं पड़ना चाहिए और ना ही अपनी वास्तविक स्थिति को भूलना चाहिए।

दोहा सं. 17

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यह शरीर रूपी मंदिर ढह गया है और उसे दफनाने से (मृत्यु से) पूर्व जो सुगन्धित पदार्थ था वह दुर्गंधपूर्ण शैवाल (पानी का घास) में बदल गया। कहने का तात्पर्य है कि शरीर के अवयव रूपी ईंट शैवाल में परिणत हो गईं इस शरीर रूपी मंदिर का निर्माता अर्थात ब्रह्म इसका निर्माण करके उसे दुबारा नहीं मिला, क्योंकि उसने ऐसे सुंदर शरीर की रचना की थी।

दोहा सं. 28

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जिस प्राणी ने भगवान के नाम के स्मरण करने से मन चुराया है और इतना ही नहीं उनके गुणों का गान करना भी भुला दिया है, उनको भगवान ने बागुल (चमगादड़) नामक पक्षी बना दिया है जो वृक्ष की शाखाओं पर नीचे की ओर मुंह करके (उल्टा) लटका रहता है।

दोहा सं. 33

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे जीव! तुम प्रभु–भक्ति की ओर अग्रसर नहीं हुए और सांसारिक बंधनों में फंस गए। जिसके कारण तुम अपने सेना जैसे अपने कुटुंबन पालन–पोषण करते रहे और सांसारिक उलझनों में उलझ कर संपूर्ण जीवन व्यती तथा मृत्यु के नजदीक आ पहुंचे, फिर भी तुम्हारा अहंकार कम नहीं हुआ।

दोहा सं. 37

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मानव! तुम्हारा यह शरीर जा रहा है इसे बचा सकते हो तो बचाओ। कहने का तात्पर्य है कि यह जीवन प्रभु–भक्ति के बिना व्यथ ही बीता जा रहा है यदि तुम इस जन्म को पुनः प्राप्त करना चाहते हो तो सत्कर्म करके इसका सदुपयोग करो, प्रभु–भक्ति की ओर प्रवृत हो जाओ क्योंकि जिनके पास लाखों–करोड़ो की संपत्ति थी, धन–दौलत थी वे भी इस संसार से खाली हाथ चले गए। अतः तुम व्यर्थ ही माया के चक्कर में फंसकर अपने अमूल्य जीवन को नष्ट कर रहे हो।

दोहा सं. 39

व्याख्या– कबीर साहब जी कहते हैं कि मानव शरीर कच्चे घड़े की तरह है, जिसे वह सदैव साथ लिए घूमता रहता है अर्थात मानव जीवन घड़े के समान कोमल तथा अनिश्चित भविष्य वाला है। वह काल की जरा सी चोट से शीघ्र ही फूट जाएगाय फूटने पर उसमें से कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता, कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। कहने का तात्पर्य है कि भक्ति–रहित शरीर रूपी घर शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा, फिर कुछ भी शेष नहीं रहेगा।

दोहा सं. 45

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि समस्त सांसारिक वैभवपूर्ण प्रलोभनों को छोड़कर परम तत्व परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। यदि व्यक्ति सांसारिक विषय–वासनाओं में ही संलिप्त रहा ते परमात्मा को प्राप्त करना असंभव है। हे मानव! तू इन सांसारिक आकर्षणों से विरक्त होकर परम तत्व परमात्मा से साक्षात्कार कर क्योंकि सारा संसार उसी परम तत्व में ही समाहित है। कहने का तात्पर्य है कि मोह–मायादि सांसारिक आकर्षणों का त्याग करके ही ब्रह्म–प्राप्ति संभव है।

दोहा सं. 47

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यह संसार रूपी बर्तन दुखों से भरा हुआ दुखों का भंडार है, इसमें भूख और अभाव पूरी तरह व्याप्त हैं और जिन व्यक्तियों पर राम की दया नहीं है वे तो हीन कोख से उत्पन्न हुए हैं। अथवा परमात्मा की दया के बिना जो बडे खजाने हैं वे भी रिक्त रहते हैं। कहने का आशय है कि राम की कृपा ही सर्वोपरि है उसी से सब कुछ होता है

दोहा सं. 50

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मानव! तम्हें सांसारिक विषय वासनाओं में लिप्त से प्रेमपूर्वक बातचीत नहीं करनी चाहिए। कहने का तात्पर्य है कि उससे अंतरंग बनकर हार्दिक बातें नहीं करनी चाहिए तथा जो प्राणी ब्रह्म से प्रेम करते हैं अर्थात भगवान की भक्ति करते हैं उनसे अपने हृदय की बात खोलकर करनी चाहिए ताकि वे भगवद्भक्ति का मार्ग प्रशस्त कर सकें।

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मनुष्य! तुम रगड़–रगड़कर स्नान क्यों कर रहे हो? तथा कपड़ों को बार–बार धोकर अर्थात साफ–सुथरे कपड़े पहनकर तुम स्वयं को शुद्ध मानते हो। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं है। इसके लिए

आंतरिक शुद्धि आवश्यक है। बाह्य शुद्धि से मोक्ष संभव नही है। बाह्य शुद्धि से प्रसन्न होकर हे मूर्ख! तू सुख की नींद मत सो। कहने का तात्पर्य है कि तू इस सुख–निद्रा और अज्ञान का त्याग करके आंतरिक शुद्धि की ओर अग्रसर हो ताकि मोक्ष की प्राप्ति हो सके।

दोहा सं. 55

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि तुम्हारा सगा–संबंधी यहां कोई नहीं है सब स्वार्थ के कारण एक–दूसरे से बंधे हुए हैं। अतः यहां तेरा वास्तविक साथी कोई नहीं है। आगे वे कहते हैं कि जब तक व्यक्ति के मन में प्रभु–प्रेम उत्पन्न नहीं होता तब तक उसको मुक्ति–प्राप्ति का विश्वास नहीं होता। कहने का तात्पर्य है कि भगवत–प्रेम उत्पन्न होने पर जीव भक्ति मार्ग की ओर अग्रसर होता है और सतत साधना करते हुए मुक्ति प्राप्त करता

दोहा सं. 62

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जीवन रूपी नौका अत्यंत जर्जर है और इसके मल्लाह पूर्णरूपेण मूर्ख हैं, बेकार हैं। इस स्थिति में वे ही भवसागर पार कर सकते हैं जिनके सिर पर पाप का बोझ नहीं है अर्थात जो निर्मल, पवित्र एवं शुद्ध आत्मा वाले नहीं हैं और जो पापात्मा हैं अर्थात जिनके सिर पर पाप का बोझ है वे इस भवसागर में डूब जाते।

1.8 मन को अंग मन

मन के मते न चालिये, छाड़ि जीव की बाँणि।
ताकू केरे सूत ज्यूँ, उलटि अपूठा आँणि।।1।।
चिंता चिति निबारिए, फिर बूझिए न कोइ।
इंद्री पसर मिटाइए, सहजि मिलैगा सोइ।।2।।
आसा का ईधन करूँ, मनसा करूँ विभूति।
जोगी फेरी फिल करौं, यों बिनवाँ वै सूति।।3।।
कबीर सेरी साँकड़ी चंचल मनवाँ चोर।
गुण गावै लैलीन होइ, कछू एक मन मैं और।।4।।
कबीर मारूँ मन कूँ, टूक टूक है जाइ।
विष की क्यारी बोई करि, लुणत कहा पछिताइ।।5।।
इस मन को बिसमल करौं, दीठा करौं अदीठ।
जै सिर राखौं आपणां, तौ पर सिरिज अंगीठ।।6।।
मन जाणें सब बात, जाणत ही औगुण करै।
काहे की कुसलात, कर दीपक कूँ बैं पड़ै।।7।।
हिरदा भीतरि आरसी, मुख देषणां न जाइ।

मुख तौ तौपरि देखिए, जे मन की दुविधा जाइ।।8।।
मन दीया मन पाइए, मन बिन मन नहीं होइ।
मन उनमन उस अंड ज्यूँ, खनल अकासाँ जोइ।।9।।
मन गोरख मन गोविंदो, मन हीं औघड़ होड़।
जे मन राखै जतन करि, तो आपै करता सोइ।।10।।
एक जग दोसत हम किया, जिस गलि लाल कबाइ।
एक जग धोबी धोड़ मरै, तो भी रंग न जाइ।।11।।
पाणी ही तैं पातला, धूवाँ ही तै झींण।
पवनाँ बेगि उतावला, सो दोसत कबीरै कीन्ह।।12।।
कबीर तुरी पलांड़ियाँ, चाबक लीया हाथि।
दिवस थकाँ साँई मिलौं, पीछे पड़िहै राति।।13।।
मनवां तो अधर बस्या, बहुतक झीणां होइ।
आलोकत सचु पाइया, कबहूँ न न्यारा सोइ।।14।।
मन न मीया मन करि, सके न पंच प्रहारि।
सीला साच सरधा नहीं, इंद्री अजहुँ उद्यारि।।15।।
कबीर मन बिकरै पड़ा, गया स्वादि के साथ।
गलका खाया बख्ताँ अब क्यूँ आवै हाथि।।16।।
कबीर मन गाफिल भया, सुमिरण लागै नाहिं।
घणीं सहैगा सासनाँ, जम की दरगह माहि'।।17।।
कोटि कर्म पल मैं करै, यहु मन बिषिया स्वादि।
सतगुर सबद न मानई, जनम गँवाया बादि।।18।।
मैंमंता मन मारि रे, घटहीं माहै घेरि।
जबहीं चालै पीठि दै, अंकुस दे दे फेरि।19।।
मैंमंता मन मारि रे, नान्हाँ करि करि पीसि।
तब सुख पावै सुंदरी, ब्रह्म झलके सीसि।।20।।
कागद केरी नाँव री. पाँणी केरी गंग।
कहै कबीर केसे तिरूँ, पंच कुसंगी संग।।21।।
कबीर यह मन कत गया, जो मन होता काल्हि।
डूंगरि बूठा मेह ज्यूँ, गया निबाँणाँ चालि।।22।।
मृतक कूँ धी जौ नहीं, मेरा मन बी है।

बाजै बाव बिकार की, भी मूवा जीवै।।23।।
काटि कूटि मछली, छींके धरी चहोड़ि।
कोइ एक अषिर मन बस्या, दह मैं पड़ी बहोडि।।24।।
कबीर मन पंषी भया, बहुतक चढ़ा अकास।
उहाँ ही तैं गिरि पड़ा, मन माया के पास।।25।।
भगति दुबारा सकड़ा, राई दसवै भाइ।
मन तौ मैंगल लै रह्यो, क्यूँ करि सके समाइ।।26।।
करता था तो क्यूँ रह्या, अब करि क्यूँ पछताइ।
बोवै पेड़ बबूल का, अब कहाँ नै खाइ।।27।।
काया देवल मन धजा, विष्रै लहरि फरराइ।
मन चाल्याँ देवल चलै, ताका सर्बस जाइ।।28।।
मनह मनोरथ छाँड़ि दे, तेरा किया न होइ।
पाँणी मैं घीव गीकसै, तो रूखा खाइ न कोइ।।29।।
काया कसूं कमाण ज्यूँ, पंचतत्त करि बांण।
मारौं तो मन मृग को, नहीं तो मिथ्या जाँण।।30।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'मन को अंग' साखी का आठवां अंग है, जिसमें कुल 30 दोहे संकलित हैं। इनमें मन की चंचलता और दृढ़ता के संबंध में बताते हुए कबीर साहब जी ने कहा है कि चंचलता साधना में बाधक है, विषय–विकारों की ओर धकेलने वाली है लेकिन भक्ति की दृढ़ता मुक्ति की सफलता निर्भर करती है।

दोहा सं. 1

व्याख्या

हे जीव! तुम्हें मन की इच्छा के अनुसार नहीं चलना चाहिए, उसका अनुकरण नहीं करना चाहिए। इसका अनुकरण विषय–वासनाओं का मार्ग प्रशस्त करना है। तम्हें मन के पीछे चलने की आदत को छुड़ा देना चाहिए। जिस तरह ताकू पर चढ़े कच्चे सूत को पिंडिया पर चढ़ा दिया जाता है ठीक उसी प्रकार मन की चंचलता का त्याग करक उसे भगवद्–भक्ति में लगा देना चाहिए।

दोहा सं. 3

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मैं अपनी आशाओं का ईधन बना डालूं और इसे ज्ञान–यज्ञ में डाल दूं तथा मन में उठने वाले भावों को भी उसी में डालकर राख बना डालूं। फिर उस विभूति को लगाकर योगी का रूप धारण करके

प्रत्येक पल परम तत्व की प्राप्ति के लिए चक्कर लगाता रहूं। आगे वे कहते हैं कि इस तरह मैंने अपने जीवन रूपी सूत को कातते रहना है ताकि परमात्मा की प्राप्ति हो जाए।

दोहा सं. 13

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मैंने मन रूपी घोड़े पर जीन डाल ली है और उसके कुशल संचालन के लिए संयम रूपी चाबुक को, अपने हाथ में ले लिया है। आगे वे कहते हैं कि मैं जीवन रूपी दिन में ही साधना के माध्यम से परमात्मा के दर्शन करना चाहता हूं क्योंकि मृत्यु रूपी रात्रि जीवन रूपी दिन के बीतने पर शीघ्र ही आलिंगनबद्ध कर लेगी अर्थात मेरी जीवन यात्रा अवरुद्ध हो जाएगी। परंतु भक्ति करते हुए साधना पथ पर अग्रसर होकर ही परम तत्व परमात्मा से महामिलन हो सकता है।

दोहा सं. 21

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यह शरीर कागज रूपी नाव है। शरीर रूपी सरिता मोह–माया से परिपूर्ण है। कहने का तात्पर्य है कि भवसागर रूपी संसार विषय–विकारों के जल से भरा हुआ है। इस जीवन–यात्रा में काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि पांच दुर्जन साथी हैं। जो भवसागर को पार करने में बाधा उत्पन्न करते हैं। ऐसी कठिन परिस्थितियों को पार करना मुश्किल है। कहने का भावार्थ है कि संसार रूपी सागर में पांच इंद्रियां ऐसी हैं जिनके मोह–पाश में बंधकर संसार को पार करना संभव नहीं है।

दोहा सं. 25

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मेरा मन पक्षी बन गया और आकाश में बहुत दूर तक चढ़ गया और वहां से गिरकर माया के पास चला गया। कहने का तात्पर्य है कि साधक का मन रूपी पक्षी ब्रह्मरंध्र (शून्य) में पहुंच गया अर्थात मन ईश्वर की ओर उन्मुख हो गया था और शून्य प्रदेश में प्रवेश तो कर गया लेकिन विषय–विकार ग्रस्त होने पर वह ब्रह्मरंध्र के पास से नीचे गिर गया और मोह–माया में ही रम गया अर्थात वह पुनः भौतिक, लौकिक जगत की ओर लौट आया और सांसारिक बंधनों में बंध गया।

दोहा सं. 30

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मैं अपने शरीर को धनुष की तरह कस लूं और पांचों तत्वों (क्षिति + जल+ पावक+जल+आकाश = शरीर) का बाण बना लूं, जिससे मन रूपी मृग का संधान कर डालूं, उसका वध कर दूं तो ठीक है अन्यथा मेरे सभी सदुपदेशों को मिथ्या जानना। कहने का आशय है कि चंचल मन को साधना द्वारा मार कर ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है, अन्यथा सभी साधना व्यर्थ हैं, झूठी हैं।

1.9 माया कौ अंग

जग हठवाड़ा स्वाद ठग, माया बेसाँ लाइ।

रामचरण नीका गही, जिनि जाइ जनम ठगाइ।।1।।

कबीर माया पापणी, फंध ले बैठि हाटि।

सब जग तो फंधै पड़ा, गया कबीरा काटि।।2।।

कबीर माया पापणी, लातै लाया लोंगे।
पूरी कीनहूँ न भोगई, इनका इहै बिजोग।।3।।

कबीरा माया पापणी, हरि सूँ करे हराम।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देईं राम।।4।।

जाँणी जे हरि को भजौ, मो मनि मोटी आस।
हरि बिचि घालै अंतरा, माया बड़ी बिसास।।5।।

कबीर माया मोहनी, मोहे जाँण सुजाँण।
भागाँ ही छूटै नहीं, भरि भरि मारै बाँण।।6।।

कबीर माया मोहनी, जैसी मीठी खाँड़।
सतगुर की कृपा भई, नहीं तो करती भाँड़।।7।।

कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घाँणि।
कोइ एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की काँणि।।8।।

कबीर माया मोहनी, माँगी मिलै न हाथि।
मनह उतारी झूठ करि, तब लागी डौलै साथि।।9।।

माया दासी संत की, ऊँभी देइ असीस।
बिलसी अरु लातौं, छड़ी सुमरि सुमरि जगदीस।।10।।

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर।
आसा त्रिस्नाँ ना मुई, यों कहि गया कबीर।।11।।

आसा जीवै जग मरै, लोग मरे मरि जाइ।
सोइ मूबे धन संचते, सो उबरे जे खाइ।।12।।

कबीर सो धन संचिए, जो आगै कूँ होइ।
सीस चढ़ाए पोटली, ले जात न देख्या कोइ।।13।।

त्रीया त्रिण्णां पापणी, तासूँ प्रीति न जोड़ि।
पैड़ी चढ़ि पाछौं पड़े, लागै मोटी खोड़ि।।14।।

त्रिष्णा सींची नाँ बुझे, दिन दिन बढ़ती जाइ।
जबासा के रूप ज्यूँ, घण मेहाँ कुमिलाइ।।15।।

कबीर जग की को कहे, भौ जलि बूड़े–दास।

पारब्रह्म पति छाड़ि कर, करैं मानि की आस।।16।।

माया तजी तौ का भया, मानि तजी नहीं जाइ।

मानि बड़े गुनियर मिले, मानि सबनि की खाइ।।17।।

रामहिं थोड़ा जाँणि करि, दुनियाँ आगै दीन।

जीवाँ को राजा कहै, माया के आधीन।।18।।

रज बीरज की कली, तापरि साज्या रूप।

राम नाम बिन बूड़ि है, कनक काँमणी कप।।१०।।

माया तरवर त्रिविध का, साखा दुख संताप।

सीतलता सुपिनै नहीं, फल फीको तनि तापा

कबीर माया ढाकड़ी, सब किसही कौ खाडी

दाँत उपाणौं पापड़ी, जे संतौं नेड़ी जाइ।।21।।

नलनी सायर घर किया, दौं लागी बहुतेणि।

जलही माँहै जलि मुई, पूरब जनम लिपेणि।।22।।

कबीर गुण की बादली, ती तरबानी छाँति।

बाहरि रहे ते ऊबरे, भीगें मंदिर माँहिं।।23।।

कबीर माया मोह की, भई अँधारी लोई।

जे सूते ते मुसि लिये, रहे बसत कूँरोइ।।24।।

संकल ही तैं सब लहे, माया इहि संसार।

ते क्यूँ छूटे बापुड़े, बाँधे सिरजनहार।।25।।

बाड़ि चढ़ती बेलि ज्यूँ, उलझी, आसा फंध।

तूटै पणि छूट नहीं, भई ज बाना बंध।।26।।

सब आसण आस तणाँ, त्रिबर्तिके को नाहिं।

थिवरिति के निबहै नहीं, परिवर्ति परपंच माँहि।।27।।

कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह।

जिहि घरि जिता बधावणाँ, तिहि घरि तिता अँवोह।।28।।

माया हमगौ यों कह्या, तू मति दे रे पूठि।

और हमारा हम बलू, गया कबीरा रूठि।।29।।

बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ़ा कलंक।

और पँखेरू पी गए, हंस न बोवै चंच।।30।।

कबीर माया जिनि मिलें, सो बरियों वे बाँह।
नारव से मुनियर मिले, किसौ भरोसे त्यौंह।।31।।
माया की झल जग जल्या, कनक काँमणी लागि।
कहुँ धौं किहि विधि राखिये, रुई पलेटी आगि।।32।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों का अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'माया कौ अंग' साखी का नौवां अंग है, जिस 10 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने माया के विभिन्न रूपों का वर्णन किया। इसे परमात्मा प्राप्ति में बाधक बताया है। माया मनुष्य को अपने मोह–पाश में फंसा लेती है ंऔर प्रभु–भक्ति से विमुख कर देती है।

दोहा सं. 3

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि माया पापिनी है, वेश्या है। यह अपने आकर्षण से संपूर्ण संसार में विषय–वासनाओं के प्रति आकर्षित करती, उनके प्रति दृढ़ इच्छा शक्ति उत्पन्न करती है और संपूर्ण संसार को ठगती रहती है लेकिन इसका पूरा भोग किसी ने नहीं किया, यही मनुष्य का वियोग है जिसमें वह असफल रहा। कहने का तात्पर्य है कि जिस प्रकार वेश्या पर किसी का भी पूर्ण अधिकार नहीं होता और न ही उसका कोई पूर्ण उपभोग करता है, ठीक यही स्थिति माया की होती है।

दोहा सं. 7

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यह माया मोहिनी है, यह खांड जैसी मीठी है। यह तो सद्गुरु की कृपा हो गई अन्यथा यह तो मुझे भांड बनाकर ही छोड़ती। कहने का तात्पर्य है कि सद्गुरु की कृपा एवं मार्ग दर्शन के फलस्वरूप ही मैं भगवद्–भक्ति की ओर अग्रसर हुआ, अन्यथा यह माया मेरा सर्वनाश करके ही छोड़ती, मुझे विनष्ट कर देती।

दोहा सं. 11

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि न माया ही मरती है और न मन ही मरता है बल्कि इनके मध्य यह शरीर धीरे–धीरे करके नष्ट हो रहा है। मानव माया के वशीभूत होकर आशा और तृष्णा को छोड़ नहीं सकता जिससे वह अपने शरीर को समाप्त कर लेता है अर्थात आशा और तृष्णा बनी रहती हैं। इन्हीं के कारण जीव आवागमन के बंधन में पड़ा रहता है फिर भी सांसारिक कामनाओं के प्रति आकर्षण कम नहीं हुआ।

दोहा सं. 24

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यह माया मोहिनी है, सम्मोहक है, इसकी शक्ति अपार है। इसकी शक्ति से संपूर्ण संसार में अंधकार फैल जाता है। कहने का तात्पर्य है कि इसने संपूर्ण संसार को अपने मोहपाश में बांध रखा है,

जिससे चारों ओर अज्ञान का अंधकार व्याप्त है। जो प्राणी इस अज्ञान के अंधकार में सोए रहते हैं अर्थात जिनको ज्ञान नहीं है वे माया के द्वारा लूट लिए जाते हैं अर्थात वे अपने लक्ष्य को भूल जाते हैं। अंततः वे इस सार तत्व अर्थात परम तत्व परमात्मा को प्राप्त करने के लिए पछताते रहते हैं, रोते रहते हैं, छटपटाते रहते हैं।

दोहा सं. 28

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार का माया—मोह व्यर्थ है, झूठा और क्षणिक है। कहने का तात्पर्य है कि सांसारिक बंधनों और मोह—माया में फंसना व्यर्थ है, सारहीन है। जिस घर में जितने उत्सव मनाए जाते हैं आनंदोल्लासपूर्वक जीवन व्यतीत किया जाता है उसमें उतने ही दुख विद्यमान हैं। कहने का तात्पर्य है कि संसार में हर सुख पर दुख की छाया मंडरा रही है।

दोहा सं. 31

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मनुष्य! तू माया से प्रेम मत कर, भले ही वह तुझे सैकड़ों बार बुलाए। कहने का तात्पर्य है कि माया भले ही तुम्हें विभिन्न आकर्षणों के द्वारा तम्हें अपनी ओर लुभाने का प्रयास करे लेकिन तुम उसके चक्कर मे मत आना, क्योंकि उसने नारद जैसे मुनि श्रेष्ठ को भी निगल लिया था। तब उसका कैसे भरोसा किया जा सकता है। अतः माया से दूर रहना ही तुम्हारे लिए श्रेष्ठ है।

1.10 सहज कौ अंग

सहज सहज सबकौ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजै विषिया तजी, सहज कही जै सोइ।।1।।
सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हें कोइ।
पाँचू राखै परसती, सहज कही जै सोइ।।2।।
सहजै सहजै सब गए, सुत बित कांमीण कांम।
एकमेक है मिलि रह्या, दास, कबीर रांम।।3।।
सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
जिन्ह सहजै हरिजी मिलै, सहज कहीजै सोइ।।4।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावर 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को अलग—अलग अंगों में बांटा गया है। 'सहज कौ अंग' साखी का दसवां अंग है. जिसमें 4 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने सहज—साधना को प्रभु—प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग बताया है। सहज साधना से एक आत्मा सहज रूप तथा सरल हृदय वाली हो जाती है पाखंड रहित हो जाती है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार में सहज—सहज की पुकार, उसकी रट सभी लगाते हैं लेकिन उसे कोई पहचान नहीं सका। सहज साधना उसी की है जिसने अपनी पांचों इंद्रियों को वश में कर लिया है, और प्रभु—भक्ति

में अपना ध्यान लगा लिया है, साधक की यह अवस्था ही सहजावस्था है।

1.11 साँच कौ अंग

कबीर पूँजी साह की, तूं जिनि खोवै श्वार।
खरी बिगूचनि होइगी, लेखा देती बार।।1।।
लेखा देणाँ सोहरा, जे दिल साँचा होइ।
उस चंगे दीवाँन मैं, पला न पकड़े कोइ।।2।।
कबीर चित्त चमंकिया, किया पयाना दूरि।
काइथि कागद काढ़िया, तब दरिगह लेखा पूरि।।3।।
काइथि कागद काढ़ियां, तब लेखें वार न पार।
जब लग साँस सरीर मैं, तब लग राम सँभार।।4।।
यहु सब झूठी बंदिगी, बरियाँ पंच निवाज।
साचौ मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज।।5।।
कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हतै तब दोइ।
चढ़ि मसीति एके कहै, दरि क्यूँ साचा होइ।।6।।
काजी मुलाँ भ्रमियाँ, चल्या दुनीं के साथि।
दिल थैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि।।7।।
जोरी कलिर जिहै करै, कहते हैं ज जलाल।
जब दफतर देखंगा दई, तब हैगा कौंण हवाला।।8।।
जोरी कीयाँ जुलम है, माँगे न्याव खुदाइ।
खालिक दरि खूनी खड़ा, मार मुहे मुहि खाइ।।9।।
साँई से ती चोरियाँ, चोराँ सेतो गुझ।
जाँणैगा रे जीवड़ा, मर पड़ेगी तुझा ।।10।।
सेष सबूरी बाहिरा, क्या हज काबें जाइ।
जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनकौं कहाँ खुदाए।।11।।
खूब खाँड है खोपड़ी, माँहि पड़ै बुक लूँण।
पेड़ा रोटी खाड़ करि, गला कटावै कौंण।।12।।
पापी पूजा बैसि करि, भषै मांस मद दोड़।
तिनकी दष्या मुकति नहीं, कोटि नरक फल होइ।।13।।

सकल बरण इकत्रा है, सकति पूजि मिलि खाँहि।
हरि दासनि की भांति करि, केवल जमपुरि जाँहि।।14।।
कबीर लज्या लोक की, सुमिरै नाही साच।
जानि बूझि कंचन तजै, काठा पकड़े काच।।15।।
कबीर जिनि जिनि जाँणियाँ, करत केवल सार।
सो प्राणी काहै चलै, झूठे जग की लार।।16।।
झूठे को झूठा मिलै, दूणाँ बधै सनेह।
झूठे कूँ साचा मिलै, तब ही तूटै नेह17।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'सांच कौ अंग' साखी का 11वां अंग है, जिसमें कुल 17 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने वास्तविक सत्य के बारे में अवगत कराया है।

दोहा सं. 5

व्याख्या

कबीर साहब जी काजी को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे काजी! तू दिन में पांच बार नमाज अदा करता है, यह पूजा–अर्चना झूठी है, सारहीन है, क्योंकि तुम सत्य का हनन करके झूठी पूजा–अर्चना को महत्व देते हो, ऐसा करके तुम निंदनीय कार्य कर रहे हो। कहने का तात्पर्य है कि तुम मूल तत्व को, मूल सत्य का तो स्मरण कर नहीं रहे हो अपितु बाह्य–आडंबरों को प्रश्रय दे रहे हो, ऐसा करके तुम सत्य से साक्षात्कार नहीं कर सकते क्योंकि तुम्हारी यह आस्था भेदभाव से परिपूर्ण है।

दोहा सं. 11

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे शेख! तू संतोष से बहुत दूर है। तू विषय–विकारों में लिप्त है। अशांत चितवृत्ति होने के कारण तुझे हज और काबा जाने से कोई लाभ नहीं अर्थात तुझे वहां भी कोई शांति नहीं मिल सकती क्योंकि जिस व्यक्ति का हृदय ही विकार–युक्त है, अर्थात पूर्ण नहीं है तो उसको परमात्मा की प्राप्ति कैसे हो सकती है! कहने का भाव है कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए सच्चे एवं पूर्ण हृदय की आवश्यकता है।

दोहा सं. 17

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस मिथ्या संसार में यदि झूठे व्यक्ति से झूठा मिल जाता है तो उन दोनों में दुगुना प्रेम बढ़ जाता है और यदि झूठे व्यक्ति को सच्चा अर्थात सद्गुरु मिल जाता है तो उसका इस मिथ्या संसार से प्रेम संबंध टूट जाता है। कहने का तात्पर्य है कि वह मिथ्या संसार से विमुख होकर परम तत्व परमात्मा की ओर उन्मुख होता है जिससे मोह–माया आदि विकारों से मुक्त हो परम तत्व से एकाकार हो जाता है।

1.12 भ्रम विधौंसण कौ अंग

पाहण वेरा पूतला, करि पूजे करतार।
इही भरोसै जे रहे, ते बूड़े काली धार।।1।।
काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट।
पँहनि बोई पृथमी, पंडित पाड़ी बाट।।2।।
पाँहिन फंका पूजिए, जे जनम न देई जाब।
आँधा नर आसामुषी, यौही खोवै आब।।3।।
हम भी पाहन पूजते, होते रन के रोझ।
सतगुर की कृपा भई, र्डाया सिर थैं बोझ।।4।।
जेती दे षौ आत्मा, तेता सालिगराँम।
साथू प्रतषि देव हैं, नहीं पाथर सू कॉम।5।।
सेवै सालिगराम कुँ, मन की भ्रांति न जाइ।
सीतलता सुषिनै नहीं, दिन दिन अघकी लाइ।।6।।
सेवै सालिगराँम कूँ, माया सेती हेत।
बोढ़े काला कापड़ा, नाँव धरावै सेत।।7।।
जप तप दीसै थोथरा, तीरथ ब्रत बेसास।
सूवै सैबल सेविया, यों जग चल्या निरास।।8।।
तीरथ त सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाइ।
कबीर मूल निकंदिया, कोण हलाहल खाइ।।9।।
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाँणि।
दसवाँ द्वारा देहुरा, तामै जोति पिछाँणि।।10।।
कबीर दुनियाँ देहुरै, सोस नवाँवण जाइ
हिरदा भीतर हरि बसे, तूँ ताही सौ ल्यौ लाइ।।11।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'भ्रम बिधौंसण को अंग' साखी का 12वां और जिसमें कुल 11 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने सांसारिक प्राणियों को भ्रम का वर्णन करते हुए मूर्ति–पूजा का खंडन किया है और सांसारिक प्राणियों को मूर्ख बताया है।

दोहा सं. 6

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि शालिग्राम की सेवा करने से व्यक्ति के मन की भ्रांति शांत नहीं होती। ऐसा करने से उसे शांति स्वप्न में भी नहीं मिलती अपितु उसका सांसारिक दाह दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। कहने का आशय यह है कि व्यक्ति को बाह्य आडंबरों का त्याग करके अपनी मूर्खता से स्वतंत्र होना चाहिए।

दोहा सं. 10

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि व्यक्ति को अपना मन मथुरा समझना चाहिए और हृदय को द्वारिका तथा शरीर को काशी के रूप में जानना चाहिए। इस शरीर का दशम द्वार अर्थात ब्रह्मरंध्र ही देवालय है, उसी में परम ज्योति को पहचानना चाहिए।

1.13 भेष कौ अंग

कर सेती माला जपै, हिरदै बहै डंडूल।
पग तौं पाला मैं गिल्या, भाजण लागी सूल।।1।।
कर पकरै अँगुरी गिनें, मन धावै चहुँ वीर।
जाहि फिरॉयों हरि मिलै, सो भया काठ की ठौर।।2।।
माला पहरै मनमुषी, ताथै कछु न होइ़।
मन माला को फेरताँ, जुग उजियारा सोइ।।3।।
माला पहरे मनमुषी, बहुतै फिरै अचेत।
गाँगी रोले बहि गया, हरि सूँ नाँहीं हेत।।4।।
कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न लिखै आपणों, कहा फिरावै मोहि।।5।।
कबीर माला मन की, और संसारी भेष।
माला पहर्या हरि मिले, तौ अरहट के गलि वेष।।6।।
माला पहर्या कुछ नहीं, रुल्प मूवा इहि भारी।
बाहरि ढोल्या हींगलू भीतरि भरी भँगरि।।7।।
माला पहर्यां कुछ नहीं, काती मन के साथि।
जब लग हरि प्रकटै नहीं, तब लग पड़ता हाथि।। 8।।
माला पहयाँ कुछ नहीं, गाँठि हिरवा की खोइ।
हरि चरनूँ, चित्त राखिये, तौ अमरापुर होइ।।9।।
माला पहर्यां कुछ नहीं, भगति न आई हाथि।

माथौ मूंछ मुँडाइ करि, चल्या जगत के साथि।।10।।
साँई सेती साँच चलि, औरों सूँ सुध भाइ।
भावै लम्बे केस करि, भावै घुरडि मुडाइ।।11।।
कैसों कहा बिगादिया, जे मूडे सौ बार।
मन कौं न काहे मुडिए, जामै बिष विकार।।12।।
मन मेवासी मूँड़ि ले, केसों मूड़े काँड।
जे कुछ किया सु मन किया, केसों कीया नाँहि।।13।।
मुँह मुँडावत दिन गए, अजहूँ न मिलिया राम
रॉम नाम कहु क्या करें, जे मन कोण औरे कॉम।
स्वॉग पहरि सोरहा भया, खाया पीया मूँढि।
जिहि सेरी साधू नीकले, सो तौ मेल्ही मूँढि।।15।।
बेसनों भया तौ क्या भया, बूझा नहीं बिबेक।
छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक।।16।।
तन कौं जोगी सब करें, मन कों बिरला कोइ।
सब सिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ।।17।।
कबीर यहु तौ एक है, पड़दा दीया भेष।
भरम करम सब दूरि करि, सबहीं माँहि अलेष।।18।।
भरम न भागा जीव का, अनंतहि धरिया भेष।
सतगुर परचे बाहिरा, अंतरि रह्या अलेष।।19।।
जगत जहंदम राचिया, झूठे कुल की लाज।
तन बिनसे कुल बिनसि है, गह्या न रॉम जिहाज।।20।।
पष ले बूडी पृथमी, झूठी कुल की लार।
अलष बिसारौं भेष मैं, बूड़े काली धार।।21।।
चतुराई हरि नाँ मिले, ऐ बाताँ की बात।
निसप्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाथ।।22।।
नवसत साजे कॉमनी, तन मन रही सँजोइ।
पीव के मन भावे नहीं, पटम कीयें क्या होइ।।23।।
जब लग पीव परचा नहीं, कन्याँ कँवारी जाँणि।

हथलेवा होसै लिया, मुसकल पड़ी पिछाँणि।।24।।

कबीर हरि की भगति का, मन मैं परा उल्लास।

मैं वासा भाजै नहीं, हूँण मतै निज वास।।25।।

मैं वासा मोई किया, दुरिजिन काढ़े दूरि।

राज पियारे राँम का, नगर बस्या भरिपूरि।।26।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'भेष कौ अंग' साखी का 13वां अंग है, जिसमें कुल 26 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने झूठी माला जपने और झूठा भेष बनाने वाले लोगों की आलोचना की है।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मायाजनित संसार में माला पहनने वाले अज्ञानी बहुत से घूमते रहते हैं। जो परम तत्व परमात्मा से प्रेम न करके बाह्याडंबरों में संलिप्त रहते हैं। उनकी स्थिति ठीक वैसी ही होती है जैसे कोई गंगा स्नान के लिए जाए और उसके तीव्र प्रवाह में बह जाए। कहने का भाव है कि उस साधक को भगवान या गंगा के लिए सच्चा प्रेम नहीं है इसलिए उसकी स्थिति अत्यंत दयनीय हो जाती है।

दोहा सं. 7

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि माला धारण करने से कोई लाभ नहीं होने वाला। माला धारक इस भार से व्यर्थ ही दबकर मरता है। कहने का भाव है कि बाह्याडंबरों से परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। ऐसे व्यक्ति की स्थिति उस बहुरूपिए जैसी होती है जो अपने शरीर पर, चेहरे पर हींगलू का लाल रंग पोत कर विभिन्न भूमिकाएं निभाता है लेकिन उसका भीतर विषय–वासनाओं की अग्नि से परिपूर्ण है।

दोहा सं. 17

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार में शरीर के योगी तो सभी बन जाते हैं लेकिन मन का योगी कोई लाखों में एक होता है। जो सच्चे मन से योग को प्राप्त करता है उसे सब सिद्धियां सहज रूप से प्राप्त हो जाती हैं। कहने का तात्पर्य है कि बाह्य आडंबरों से सिद्धियों की प्राप्ति नहीं हो पाती उसके लिए तो मानसिक योग ही सहायक हो सकता है।

दोहा सं. 19

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जीवात्मा की भ्रांति दूर न होने के कारण उसे असंख्य वेश धारण करने पड़ते हैं। कहने का आशय यह है कि माया के आवरण में बंधे होने के कारण जीव आवागमन के चक्कर में फंसा रहता है

और उसका परमात्मा से परिचय नहीं होता। लेकिन सद्गुरु ने उसे बाह्य परिचय मात्र से पहचान लिया जिससे परम तत्व परमात्मा सद्गुरु के अंतस में बस गए अर्थात ब्रह्म से उनका पूर्ण साक्षात्कार हो गया।

दोहा सं. 22

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यह सार तत्व है कि चतुराई से हरि नहीं मिलते। इनके साक्षात दर्शन तो उस भक्त को होते हैं जो निस्पृह, निष्काम एवं निराश्रय है। कहने का तात्पर्य है कि बाह्याचारों और मोह–माया रहित साधक ही उसे प्राप्त कर सकते है अन्य कोई नहीं।

1.14 कुसंगति कौ अंग

निरमल बूंद अकास की, पड़ि गइ भोमि बिकार।
मूल विनंठा माँनबी, बिन संगति भठछार।।1।।
मूरिष संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ
कदली सीप भवंग मुषी, एक बूंद तिहुँ भाइ।।2।।
हरिजन सेती रूसणाँ, संसारी सू हेत।
ते नर कदे न नीपजै, ज्यूँ कालर का खेत।।3।।
नारी मरूँ कुसंग की, केला काँठे बेरि।
वो हालै वो चीरिये, साषित संग न बेरि।।4।।
मेर नसाँणी मीच की, कुसंगति ही काल।
कबीर कहै रे प्राँणिया, बाँणी ब्रह्म सँभाल।।5।।
माषी गुड़ मैं गड़ि रही, पंष रही लपटाइ।
ताली पीटै सिरि धुनै, मीठै बोई माइ।।6।।
ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होड़।
सोवन कलस सुरे भर्या, साधूँ निंद्या सोइ ।।7।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'कुसंगति कौ अंग' साखी का 14वां अंग है, जिसमें कुल 7 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने कुसंगति को प्रभु–प्राप्ति में एक प्रमुख बाधा के रूप में देखा है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हमें मुर्खों की संगति कभी नहीं करनी चाहिए। जिस प्रकार लोहा पानी पर तैर नहीं

सकता, उसी प्रकार से मुर्ख और अज्ञानी लोग सद्विचारों से प्रभावित नहीं हो सकते। कहने का भाव यह है कि मूर्ख की संगति हमेशा कष्टदायी होती है। कवि पुनः कहता है कि यह संगति का ही प्रभाव है कि स्वाति नक्षत्र की एक बूंद भिन्न–भिन्न संगति में पड़कर भिन्न–भिन्न रूप धारण करती है। यदि वह केले में पड़ती है तो कपूर बन जाती है, सांप के मुख में पड़कर वह विष बनती है परंतु सीपी के मुख में पड़कर वह मोती का रूप धारण कर लेती है। कवि के कहने का भाव यह है कि संगति हो या कुसंगति उसका प्रभाव मनुष्य पर अवश्य पड़ता है। अपने इसी विचार को स्पष्ट करने के लिए कवि ने स्वाति नक्षत्र की ओसध्वर्षा की बंद का उदाहरण दिया।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि आत्मा ईश्वर से कहती है कि कुसंगति से मैं उसी प्रकार दुखी और परेशान हूं जिस प्रकार केला बेरी के वृक्ष के पास खड़ा व्याकुल और परेशान होता है। बेरी का वृक्ष जब अपनी स्वच्छंद वृत्ति के कारण हवा चलने से मस्ती में हिलता है तो उसके कांटे केले के पत्ते को चीर देते हैं। उसी प्रकार से मैं भी शाक्तों की कुसंगति में रहकर बहुत दुखी हूं। अतः हे प्रभु इन शाक्तों को मुझसे दूर करो।

दोहा सं. 7

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण आदि स्वर्ण हिंदू जातियों में जन्म लेकर भी सत्कर्म नहीं करता, तो उसका यह जन्म लेना व्यर्थ है। यदि व्यक्ति के कर्म उच्च नहीं हैं तो उच्च कुल में जन्म लेने का कोई लाभ नहीं है। यदि स्वर्ण कलश अर्थात सोने का घड़ा शराब से भरा है तो साधु जन तो उसकी भी निंदा करेंगे। कहने का भाव यह है कि यदि किसी व्यक्ति ने उच्च कुल में जन्म ले लिया है तो उसे कर्म भी अच्छे करने चाहिए तभी उच्च कुल में जन्म लेना सार्थक है। जैसे सोने के घड़े में यदि शराब भर दी जाए तो भी संत उसकी निंदा ही करेंगे। प्रशंसा नहीं करेंगे।

1.15 साध कौ अंग

करिय कबीर संगति साध की, कदे न निरफल होइ।

चंदन होसी बाँवना, नीब न कहसी कोइ।।1।।

कबीर संगति साध की, बेगि करीजै जाइ।

दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति बताइ।।2।।

मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगनाथ।

साध संगति हरि भगति बिन, कछू न आवै हाथ।।३।।

मेरे संगी दोइ जणां, एक बैष्णों एक रॉंम।

वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नॉंन।4।।

कबीरा बन बन में फिरा, कारणि अपणे रॉंम।

राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब कॉंम।।5।।

कबीर सोई– दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं।

अंक भरे भरि भेटिया, पाप सरीरौ जाँहिं।।6।।

कबीर चन्दन का बिड़ा, बैठ्या आक पलास।

आप सरीखे करि लिए, जे होते उन पास।।7।।

कबीर खाईं कोट की, पाणी पीवे न कोई

आइ मिलै जब गंग मैं, सब गंगोदिक होइ।।8।।

जाँनि बूझि साचहि तजै, करैं झूठ सूँ नेह।

ताको संगति राम जी, सुपिनै हो जिनि देहु।।9।।

कबीर तास मिलाइ, जास हियाली तूँ बसै।

वहि तर वेगि उठाइ, नित को गंजन को सहै।।10।।

केती लहरि समंद की, कत उपजै कत जाइ।

बलिहारी ता दास की, उलटी माँहि समाइ।।11।।

काजल केरी कोठढ़ी, काजल ही का कोट।

बलिहारी ता दास की, जे रहै रॉम की ओट।।12।।

भगति हजारी कापड़ा, तामें मल न समाइ।

साषित काली काँवली, भावै तहाँ बिछाइ।।13।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'साध कौ अंग' साखी का 15वां अंग है, जिसमें कल 13 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने संतों की संगति के महत्व पर प्रकाश डाला है।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मेरे साथी दो जन हैं– एक वैष्णव और दसरे के लिए कल्याणकारी स्वयं भगवान (प्रभु) ही हैं। प्रभु तो मुझे मुक्ति देने वाले है और वैष्णव प्रभु का स्मरण करने की प्रेरणा देता है। कहने का भाव यह है कि प्रभु भक्ति मानव के लिए कल्याणकारी है क्योंकि उससे मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है और विष्णु के भक्त हमेशा नाम स्मरण के लिए साधक को प्रवृत्त करता रहता है।

दोहा सं. 11

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार रूपी सागर में न जाने कितनी लहरें उत्पन्न होकर नष्ट हो जाती हैं। कहने का भाव यह हैं कि संसार में अनेक प्रकार की घटनाएं होती रहती हैं। मानव आवागमन के चक्र में फंसा हुआ मृत्यु तथा जन्म को प्राप्त होता रहता है। जन्म लेने और मरने की यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। लेकिन कवि उस भक्त पर न्योछावर जाता है जो संसार में जन्म लेकर ईश्वर भक्ति द्वारा ब्रह्म में लीन हो जाता है अर्थात मोक्ष पा लेता है।

1.16 साध महिमाँ कौ अंग

चंदन की कुटकी भली, नाँ बँबूर अबराँउँ।
बैश्नों की छपरी भली, नाँ साषत का बड गाउँ।।1।।
पुरपाटण सूबस बसै, आनंद ठाये ठाँइ।
राँम सनेही बाहिरा, ऊँजड़ मेरे भाँइ।।2।।
जिहिं घरि साध न पूजिये, हरि की सेवा नाँहिं।
ते घर मरहट सारषे, भूत बसै तिन माँहि।।3।।
है गै गैंवर सघन घन, छत्रा धजा फहराइ।
ता सुख थै भिष्या भली, हरि सुमिरत दिन जाइ।।4।।
हैं गै गैंवर सघन घन, छत्रपति की नारि।
तास पटंतर नाँ तुलै, हरिजन की पनिहारि।।5।।
क्यूँ नृप नारी नींदये, क्यूँ पनिहारी कौं माँन।
वमाँग सँवारै पीव कौ, वा नित उठि सुमिरै राँम।।6।।
कबीर धनि ते सुंदरी, जिनि जाया बैसनों पूत।
राँम सुमिर निरभैं हुवा, सब जग गया अऊत।।7।।
कबीर कुल तौ सो भला, जिहि कुल उपजै दास।
जिहिं कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास।।8।।
साषत बाँभण मति मिलै, बैसनों मिलै चंडाल
अंक माल दे भटिये, माँनों मिले गोपाल।।9।।
राँम जपत दालिद भला, टूटी घर की छाँनि।
ऊँचे मंदिर जालि दे, जहाँ भगति न साराँगपाँनि।।10।।
कबीर भया है केतकी, भवर भये सब दास।
जहाँ जहाँ भगति कबीर की, तहँ तहँ राँम निवास।।11।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'साध महिमां कौ अंग' साखी का 16वां अंग है, जिसमें कुल 11 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने सच्चे साधुओं की महिमा का गुणगान किया है। उन्होंने अनेक असाधुओं की तुलना में थोड़े से साधु कहीं अधिक भले हैं।

दोहा सं. 3

व्याख्या

यहां कबीर साहब जी ईश्वर की भक्ति पर बल देते हए कहते हैं कि जिस घर में न तो साधओं की पूजा होती है और न भगवान की पूजा होती है, ऐसे घर श्मशान समान सुने और भयानक हैं। ऐसे घर में तो भूतों का निवास होता है। कहने का भाव यह है कि जिस घर परिवार में संतों की सेवा नहीं होती और भगवान की भक्ति नहीं होती उस घर–परिवार के लोग सांसारिक कष्टों को भोगते रहते हैं। यहां 'भूत' शब्द का प्रयोग सांसारिक क्लेशों/भयानकताओं के लिए ही किया गया है।

दोहा सं. 8

व्याख्या

कबीर साहब जी जी कहते हैं कि वही कुल अच्छा है जिसमें प्रभु भक्त जन्म लेता है। जिस कुल में प्रभु भक्त उत्पन्न नहीं होता, वे कुल आक और पलाश जैसे पेडों के समान प्रयोजन हीन हैं। कहने का भाव यह है कि वैष्णव कुल ही श्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें जन्म लेने वाले सभी प्रभु भक्त होते हैं। जो वंश प्रभु भक्त नहीं हैं वे तो आक और पलाश के समान हैं।

1.17 मधि कौ अंगाला

कबीर मधि अंग जेको रहै, तौ तिरत न लागै बार।
दुई अंग सूँ लाग करि, डूबत है संसार।।1।।

कबीर दुविधा दूरि करि, एक अंग ह्वै लागि।
यहु सीतल वहु तपति है, दोऊ कहिये आगि।।2।।

अनल अकाँसाँ घर किया, मधि निरंतर बास।
बसुधा ब्यौम बिरकत रहै, बिनठा हर बिसवास।।3।।

बासुरि गमि न रैंणि गमि, नाँ सुपनै तरगंम।
कबीर तहाँ बिलंबिया, जहाँ छाहड़ी न घंम।।4।।

जिहि पैडै पंडित गए, दुनिया परी बहीर।
औघट घाटी गुर कही, तिहिं चढ़ि रह्या कबीर।।5।।

श्रग नृकथै हूँ रह्या, सतगुर के प्रसादि।
चरन कँवल की मौज मैं, रहितूं अंतिरु आदि।।6।।

हिंदू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ मैं कदे न जाइ।।7।।

दुखिया मूवा दुख कों, सुखिया सुख कौं झूरि।
सदा आनंदी राम के, जिनि सुख दुख मेल्हे दूरि।।8।।

कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाइ।
रामसनेही यूँ मिले , दुन्यूँ बरन गँवाइ।।9।।
काबा फिर कासी भया, रौंम भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीभ।।10।।
धरती अरु आसमान बिचि, दोइ तूँबड़ा अबध।
षट दरसन संसै पड़ा, अरु चौरासी सिध।।11।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'मधि कौ अंग' साखी का 17वां अंग है, जिसमें कुल 11 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी ने मध्यम मार्ग अपनाने की सलाह दी है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मानव! तू पुनः संशय को त्याग दे अर्थात तू अतिवादी दृष्टियों के द्वंद्व को छोड़कर एकनिष्ठ होकर मध्यम मार्ग को अपना ले। यही मार्ग तेरे लिए श्रेयस्कर है। यह सोचना कि यह मत शांतिदायक है और यह मत परिताप देने वाला है, वह कहना भी दाहक है अर्थात अति शीतलता और अति तपन दोनों ही आग के समान हैं। और दोनों ही मानव को कष्ट प्रदान करती हैं। इसलिए मनुष्य को अतिवाद को त्यागकर मध्यम मार्ग को अपनाना चाहिए।

दोहा सं. 10

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मध्य मार्ग को अपनाने से मुसलमानों के तीर्थ स्थल काबा और हिंदुओं के तीर्थ स्थल काशी में किसी प्रकार का अंतर नहीं रह जाता अर्थात काबा काशी बन जाता है और काशी काबा बन जाती है। दोनों संप्रदायों के राम तथा रहीम मिलकर एक हो जाते हैं। ये दोनों विरोधी धाराएं पहले मोटे आटे के समान थीं लेकिन मध्यम मार्ग का अनुसरण करने से ये दोनों अब सुंदर मैदा बन गई हैं। दोनों के मिलने से उत्पन्न आनंद का कबीर उपभोग कर रहे हैं।

1.18 सारग्राही कौ अंग

षीर रूप हरि नांव है, नीर आन ब्यौहार।
हंस रूप कोई साथ है, तात को जांनणहार।।1।।
कबीर साषत को नहीं, सबै बैशनों जाणि।
जा मुख राम न ऊचरै, ताही तन की हाँणि।।2।।
कबीर औगुंण ना गहै, गुँण ही कौ ले बीनि।
घट घट महु के मधुप ज्यूँ, पर आत्म ले चीन्हि।।3।।

बसुधा बन बहु भाँति हैं, फल्यौ फल्यो अगाया।

मिष्ट सुबास कबीर गहि, विषम कहै किहि साथ।।4।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर 'साखी' खंड से लिए गए है। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोनों अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'सारग्राही कौ अंग' साखी का 18वां अंग कुल 4 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी साधक को नीर–क्षीर न्याय का सिद्धांत अपनाते हुए जीवन के सारतत्व को प्रमुख स्थान देना चाहिए।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि इस संसार में अनेक प्रकार के वृक्षों वाला जंगल है। अनेक प्रकार के पेड़ यहां पर फले–फूले हुए हैं। कबीर जी कहते हैं कि हे जीव तुम इस संसार से मधुर सुगंध को ग्रहण करो। कड़वे फलों को ग्रहण करने से क्या लाभ? अर्थात कोई लाभ नहीं। कवि के कहने का अभिप्राय है कि इस संसार में अनेक प्रकार की आसक्तियां हैं। जिनका शिकार बनकर पुरुष मोह–माया में लीन हो जाता है। कबीर साधक को अनासक्ति और ज्ञान के द्वारा आनंद को प्राप्त करने की सलाह देते हैं।

1.19 उपदेश को अंग

हरि जी यहै बिचारिया, साषी कहाँ कबीर।

भौसागर मैं जीव है, जे कोई पकड़ें तीर।।1।।

कली काल ततकाल है, बुरा करौ जिनि कोइ।

अनबोवै लोहा दाहिणे, बोबै सु लुणता होइ।।2।।

कबीर संसा जीव मैं, कोई न कहै समझाइ।

बिधि बिधि बाणों बोलता, सो कत गया बिलाइ।।3।।

कबीर संसा दूरि करि, जाँमण मरण भरम।

पंचतत तत्तहि मिले, सुरति समाना मन।।4।।

ग्रिही तो च्यंता घणी, बैरागी तौ भीष।

दुहुँ कात्याँ बिचि जीव है, दो हमैं संतौं सीष।।5।।

बैरागी बिरकत भला, गिरहीं चित्त उदार।

दुहै चूका रीता पड़े, ताकूँ वार न पार।।6।।

जैसी उपजै पेड़ मूं, तैसी निबहै ओरि।

पैका पैका जोड़ताँ, जुड़िसा लाष करोड़ि।।7।।

कबीर हरि के नाँव सूँ, प्रीति रहै इकतार।

तौ मुख तैं मोती झड़ै, हीरे अंत न पार।।8।।

ऐसी बाँणी बोलिये, मन का आपा खोइ।

अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख हाइ।।9।।

कोइ एक राखै सावधान, चेतनि पहरै जागि।

बस्तन बासन सँ खिसै, चोर न सकई लागि।।10।।

प्रसंग

प्रस्तत दोहे डॉ. श्याम संदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रथावला 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दाहा । अलग—अलग अंगों में बांटा गया है। 'उपदेश कौ अंग' साखी का 19वां अंग है, जिस 10 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी ने साखियों के माध्यम से मनुष्य के अज्ञान को मिटाने का प्रयास किया है। इनमें कबीर साहब जी ने लोगों को ज्ञान की शरण में जाने की सलाह दी है। कबीर जी कहते है कि भगवान ने यह निश्चित विचार किया और मुझे आज्ञा दी कि तुम ज्ञान के भंडार साखियों को संसार के समक्ष प्रस्तुत करो। कहने का भाव यह है कि कवि यह घोषणा करता है कि प्रभु ने इउसे पृथ्वी तल पर इसलिए भेजा है कि वे अपने दोहे के द्वारा मनुष्य के अज्ञान को दूर करे प्रभु ने यह भी कहा कि इस संसार रूपी सागर में बहुत से प्राणी ऐसे है जो भव सागर से पार उतरने की आशा मन में लिए हुए है। शायद उनमें से कोई इन साखियों को सहकर पाकर भव सागर से पार उत्तर जाए।

दोहा –7

व्याख्या

कबीर साहब जी जीवात्मा को संबोधित करते हुए कहते हैं तुने सभी जीवन रूपी रत्न बेकार में नष्ट कर दिए हैं और ईश्वर की भक्ति नहीं की। यदि तूने थोड़ी—थोड़ी भी प्रभु भक्ति की होती तो आज तेरा जीवन सत्कर्मों से युक्त हो जाता। जैसे हम पैसा—पैसा जोड़कर लाखों की संपत्ति जोड़ लेते हैं। उसी प्रकार थोड़ी—थोड़ी भक्ति करके मनुष्य मुक्ति की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। कहने का भाव है कि मानव ने अपने मूल चैतन्य को जिस रूप में प्राप्त किया था, अंत तक उसका संरक्षण और निर्वाह करना चाहिए। ध्यान और भक्ति का कण—कण जोड़ने से मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

1.20 बेसास कौ अग

जिनि नर हरि जठराँह, उदिके थैं षंड प्रगट कियौ।

सिरजे श्रवण कर चरन, जीव जीभ मुख तास दीयो।।

उरध पाव अरध सीस, बीस पषां इम रषियौ।

अंन पान जहां जरै, तहाँ तैं अनल न चषियौ।।

इहिं भाँति भयानक उद्र में, न कबहू छंछरै।

कृसन कृपाल कबीर कहि, इम प्रतिपालन क्यों करे।।1।।

भूखा भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग।

भांडा घड़ि जिनि मुख दिया, सोई पूरण जोग।।2।।

रचनहार कूँ चीन्हि लै, खैचे कूँ कहा रोई।
दिल मंदिर मैं पैसि करि, तांणि पछेवड़ा सोई।।3।।
राम नाम करि बोहड़ा, बांही बीच अधाइ।
अंति कालि सूका पड़ै, तौ निरफल कदे न जाइ।।4।।
च्यंतामणि मन में बसै, सोई चित्त मैं आंणि।
बिन च्यंता च्यंता करै, इहै प्रभू की बांणि।।5।।
कबीर का तूँ चितवै, का तेरा च्यंत्या होइ।
अणच्यंत्या हरिजी करै, जो तोहि च्यंत न होइ।।6।।
करम करीमां लिखि रह्या, अब कछू लिख्या न जाइ।
मासा घट न तिल बधै, जो कोटिक करै उपाइ।।7।।
जाकौ चेता निरमया, ताकौ तेता होइ।
रती घटै न तिल बधै, जो सिर कूटै कोइ।।8।।
च्यंता न करि अच्यंत रहु, सांई है संभ्रथ।
पसु पंषरू जीव जंत, तिनको गांडि किसा ग्रंथ।।9।।
संत न बांधै गाँठड़ी, पेट समाता लेइ।
साई सूँ सनमुख रहै, जहाँ माँग तहाँ देइ।।10।।
रामँ राँम सूँ दिल मिलि, जन हम पड़ी बिराइ।
मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरकि न जाड़।11।।
कबीर तूँ काहे डरै, सिर परि हरि का हाथ।
हस्ती चढ़ि नही डोलिये, कूकर भूसैं जु लाष।।2।।
मीठा खाँण मधुकरी, भाँति भाँति कौ नाज।
दावा किसही का नहीं, बित बिलाइति बड़ राज।।3।।
मोनि महातम प्रेम रस, गरवा तण गुण नेह।
ए सबहीं अह लागया, जबहीं कह्या कुछ देह।।4।।
मँगण मरण समान है, बिरला वंचौ कोइ।
कहै कबीर रघुनाथ सूँ, मतिर मँगावै नाहि।।5।।
पांडल पंजर मन भवर, अरथ अनूपम बास।
राँम नाँम सींच्या अँमी, फल लागा वेसास।।16।।

मेर मिटी मुकता भया, पाया ब्रह्म बिसास।

अब मेरे दूजा को नहीं, एक तुम्हारी आस।।17।।

जाकी दिल में हरि बसै, सो नर कलपै काँइ।

एक लहरि समंद की, दुख दलिद्र सब जाँइ।।8।।

पद गाये लैलीन है, कटी न संसै पास।

सबै पिछीड़ै, थोथरे, एक बिनाँ बेसास।।19।।

गावण हीं मैं रोज है, रोवण हीं में राग।

इक वैरागी ग्रिह मैं, इक गृही मैं वैराग।।20।।

गाया तिनि पाया नहीं, अणगाँयाँ थैं दूरि।

जिनि गाया बिसवास सूँ, तिन राम रह्या भरिपूरि।।2।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली ''साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों का अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'बेसास कौ अंग' साखी का 20वां अंग है, जिसमें कर 21 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी प्रभु के प्रति विश्वास और आस्था पर अधिक बल दिया है। क्योंकि विश्वास तथा आस्था के बिना साधक को अपनी साधना सफलता नहीं मिल सकती।

दोहा सं. 6

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मानव ! तू क्यों चिंता करता रहता है। तुम्हारे चिंता करने से होता भी क्या है? अर्थात मनुष्य अगर चिंता करे भी तो उससे कछ नहीं हो सकता। तुम अपने मन से चिंता को दूर कर दो यही तुम्हारे लिए उचित है क्योंकि प्रभु (ईश्वर) अप्रत्याशित (बिना सोचा हुआ काम) कर देते हैं। कहने का भाव है कि मानव जिसके बारे में सोच भी नहीं सकता, उसकी उसे प्राप्ति हो जाती है। इसलिए व्यर्थ की चिंता से कोई लाभ नहीं।

दोहा सं. 10

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सच्चा साधु अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ही सामग्री लेता है अर्थात वह भर पेट भोजन के अतिरिक्त कुछ नहीं लेता। संग्रह करके वह गठरी नहीं बांधता। ईश्वर हमेशा उसके सामने रहता है और जब भी वह आवश्यकतानुसार अपने प्रभु से मांगता है, वह उसे दे देता है। कहने का भाव है कि सच्चा साधु केवल उदर के बराबर का भोजन ही मांगता है, उससे अधिक नहीं।

दोहा सं. 17

व्याख्या

कवि कहता है कि मेरा ममत्व अर्थात अहंकार नष्ट हो जाने से अब में मुक्त हो गया हूं अथवा हम यूं कह सकते हैं कि मेरे मन से अहंकार निकल जाने पर मैं मोती के समान निर्मल हो गया हूं और मैंने प्रभु का विश्वास प्राप्त कर

लिया है। परंतु कवि ईश्वर को संबोधित करता हुआ कहता है कि हे प्रभु! आपके सिवाय मेरा और कोई नहीं है। मुझे केवल आप की ही आशा है।

दोहा सं. 21

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जिन साधकों ने मन में अभिमान की भावना रखकर भगवान की भक्ति की है उन्हें भगवान प्राप्त नहीं हो सका। उधर जिन्होंने भगवान के गुणों का गान ही नहीं किया अर्थात जो प्रभु भक्ति में लीन ही नहीं हुए वे वैसे ही भगवान से दूर हो गए। परंतु जिन्होंने दृढ़ विश्वास के साथ प्रभु स्मरण किया। उनमें भगवान पर्णरूपेण प्राप्त हो गए। कहने का भाव है कि प्रभु के प्रति पूर्ण विश्वास रखने से ही उसकी भक्ति की जा सकती है और उसे पाया जा सकता है।

1.21 सबद कौ अंग

कबीर सबद सरीर मैं, बिनि गुण बाजै तंति।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, तार्थं छूटि भरंति।।1।।
सती संतोषी सावधान, सबद भेद सुबिचार।
सतगुर के प्रसाद थैं, सहज सील मत सार।।2।।
सतगुर ऐसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरि करि, देह द्रपन करे सोइ।।3।।
सतगुर साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही में मिलि गया, पड़ा कलेजे छेक।।4।।
हरि रस जे जन बेधिया, सतगुण सी गणि नाहि।
लागी चोट सरीर में, करक कलेजे माँहि।।5।।
ज्यूँ ज्यूँ हरिगुण साभलूँ, त्यूँ त्यूँ लागै तीर।
साँठी साँठी झड़ि पड़ि, झलका रह्या सरीर।।6।।
ज्यूँ ज्यूँ हरिगुण साभलूँ, त्यूँ त्यूँ लागै तीर।
लागै थैं भागा नहीं, साहणहार कबीर।।7।
सारा बहुत पुकारिया, पीड़ पुकार और।
लागी चोट सबद की, रह्या कबीरा ठौर।।8।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'सबद कौ अंग' साखी का 21वां अंग है, जिसमें कुल 8 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी ने अनहद नाद की चर्चा की है।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सद्गुरु एक सच्चा शूरवीर है। उसने अपना एक ऐसा शब्द रूपी बाण साधक पर चलाया कि जिसके लगते ही साधक का अहंकार नष्ट हो गया और उसके हृदय में घाव हो गया अर्थात वह ईश्वरीय समाधि में डूब गया और संसार के संबंधों से उसका विच्छेद हो गया। कहने का भाव है कि गुरु कृपा से ही ज्ञान रूपी शब्द की प्राप्ति होती है और ज्ञान प्राप्त होने के बाद साधक की अहं भावना नष्ट हो जाती है और वह सांसारिक मोह माया से मुक्त हो जाता है। दोहा सं. 8

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि ढोंगी साधु प्रेम विरह का झूठा दिखावा बहुत करता है अर्थात वह शोर मचाकर बार–बार घोषणा करता है कि उसके मन में ईश्वरीय प्रेम का आघात है। लेकिन ईश्वरीय प्रेम की पीड़ा कुछ और ही होती है। उस पीड़ा से ग्रस्त सच्चे साधु प्रदर्शन नहीं करते। सच्चे गुरु की शब्द रूपी बाण की चोट जब कबीर साहब को लग गई तो उसका मन एक स्थान पर स्थिर हो गया है। वह अब किसी और की बात नहीं सुनता। वह तो अब प्रभु भक्ति में लीन है।

1.22 जीवन मृतक कौ अंग

जीवन मिरतक है रहै, तजै जगत की आस।

तब हरि सेवा आपण करै, मति दुख पावै दास।।1।।

कबिरा मन मिरतक भया, दुरबल भया सरीर।

तब पैडे लागा हरि फिरै, कहत कबीर कबीर।।2।।

कबीर मरि मड़हट रह्या, तब कोइ न बझै सार।

हरि आदर आगै लिया, ज्यूँ गउ बछ की लार।।३।।

घर जालौं घर उबरे, घर राखौं घर जाइ।

एक अचंभा देखिया, मड़ा काल कौं खाइ।।4।।

मरता मरताँ जग मुवा, औसर मवा न कोई।

कबीर ऐसैं मरि मुवा, ज्यूँ बहुरि न मरना होइ।।5।।

बैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार।

एक कबीरा ना मुवा, जिनि के राम अधार।।6।।

मन मार्यां ममता मुई, अहं गई सब छूटि।

जोगी था सो रमि गया, आसणि रही विभति।।7।।

जीवन थै मरिबो भलौ, जौ मरि जानै कोइ।

मरनै पहली जे मरे, तौ कलि अजरावर होइ।।8।।

खरी कसौटी राम की, खोटा टिके न कोइ।

राम कसौटी सो टिके, जो जीवन मिरतक होइ।।9।।
आपा मेट्या हरि मिले, हरि मेट्या सब जाइ।
अकथ कहाणी प्रेम की, कह्या न को पत्याइ।।10।।
निगु साँवाँ वहि जायगा, जाके थाघी नहीं कोड़।
दीन गरीबी बंदिगी, करता होइ सु होइ।।11।।
दीन गरीबी दीन को, दुँदर को अभिमान
दुँदर दिल विष सूँ भरी, दीन गरीबी राम।।12।।
कबीर चेरा संत का, दासिन का परदास।
कबीर ऐसे है रह्या, ज्यूँ पाऊँ तलि घास।।13।।
रोड़ा कै रही बाट का, तजि पाषंड अभिमान।
ऐसा जे जन कै रहे, ताहि मिले भगवान।।14।।

प्रसंग

प्रस्तुत दाहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'जीवन मृतक कौ अंग' साखी का 22वां अंग है, जिसमें कुल 14. दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी यह स्पष्ट किया है कि जो साधक सांसारिक भोग–वासनाओं से अपने को मुक्त कर लिया है वह जीवित है और जो अभी भी इनमें फंसा हुआ है, वह मृत है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि जब साधक का मन मर जाता है अर्थात सांसारिक मोह माया से मुक्त हो जाता है और शरीर प्रभु भक्ति के कारण दुर्बल एवं क्षीण हो जाता है, तब भगवान ही भक्त के पीछे भागते फिरते हैं तथा उसे कबीर–कबीर कह कर पुकारते हैं। कहने का भाव है कि सांसारिक आकर्षणों को त्यागने वाले को भगवद्–भक्ति स्वयं प्राप्त हो जाती है।

दोहा सं. 8

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि विषय–वासनाओं में लीन रहना जीवन है और उन वासनाओं की निवृत्ति ही मृत्यु है। अतः भोग–विलास में लीन जीवन से मृत्यु ही अच्छी है, क्योंकि ऐसी मृत्यु से जीव अपने इस अज्ञान से मुक्त हो जाता है कि भोग विलास युक्त जीवन ही सच्चा जीवन है। लेकिन यह ज्ञान उसे ही प्राप्त हो सकता है जो इस प्रकार कि निवृत्ति की मृत्यु को भली प्रकार से समझ लेता है। जो साधक पांच तत्वों से बने शरीर के छटने (मृत्यु) से पहले ही वासनाओं से विरक्त हो जाते हैं (मृत्यु का वरण कर लेते हैं) वे इस कलियुग में तत्काल अजर–अमर हो जाते हैं। यदि हम 'अजरावर' शब्द का अर्थ आश्चर्यचकित लगाएं तो अर्थ होगा– कलियुग में ही यह आश्चर्यजनक बात होगी।

दोहा सं. 13

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि मैं (कबीर) संतों का सेवक हूं और मैं भक्तों का भी भक्त हूं। कहने का भाव यह है कि कबीर साहब ने न केवल संतों की शिष्यता ग्रहण की अपितु प्रभु भक्तों की शरण भी ग्रहण की। कबीर जी पुनः कहते हैं कि जिस प्रकार घास पांव के नीचे रहती है, लेकिन किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं करती, उसी प्रकार से मैं (कबीर) साधु–संतों और प्रभु भक्तों का विनम्र सेवक बन कर रहता हूं।

1.23 हेत प्रीति सनेह कौ अंग

कमोदनी जलहरि बसै, चंदा बसै अकासि।
जो जाही का भावता, सो ताही के पास।।1।।
कबीर गुर बसै बनारसी, सिष समंदा तीर।
बिमाराया नहीं बीसरे, जे गुण होइ सरीर।।2।।
जो है जाका भावता, जदि तदि मिलसी आइ।
जाकी तन मन सौंपिया, सो कबहूँ छाँड़ि न जाइ।।3।।
स्वामी सेवक एक मत, मन ही मैं मिलि जाइ।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन के भाइ।।4।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'हेत प्रीति सनेह कौ अंग' साखी का 23वां अंग है, जिसमें कल 4 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी ने सच्चे प्रेम के महत्व को स्पष्ट किया है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

साधक का गुरु अर्थात कबीर साहब तो काशी में रहता है और शिष्य वहां से बहुत दर समुद्र के किनारे पर बैठकर तपस्या में लीन है। परंतु अगर शिष्य तथा गुरु के अंतःकर्मों में सच्चा प्रेम है तो वे एक–दूसरे को कभी नहीं भूल सकते, क्योंकि यदि साधक गुणवान है और सच्चा ईश्वर–भक्त है, तो गुरु दूर रहकर भी उसे कभी नहीं भूल सकता।

1.24 काल कौ अंग

झूठे सुख को सुख कहैं, मानत है मन मोद।
खलक चवीणाँ काल का, कुछ मुख मैं कुछ गोद।।
आज काल्हिक जिस हमैं, मारगि माल्हंता।
काल सिचाणाँ नर चिड़ा, औझड़ औच्यंताँ।।2।।

काल सिहाँणै यों खड़ा, जागि पियारो म्यंत।
रामसनेही बाहिरा तूं, क्यूँ सोवै नच्यंत।।3।।
सब जग सूता नींद भरि, संत न आवै नींद।
काल खड़ा सिर उपरै, ज्यूँ तोरणि आया बींद।।4।।
आज कहै हरि काल्हि भजैगा, काल्हि कहे फिरि काल्हि।
आज ही काल्हि करतडाँ, औसर जासि चालि।।5।।
कबीर पल की सुधि नहीं, करै काल्हि का साज।
काल अच्यंता झड़पसी, ज्यूँ तीतर को बाज।।6।।
कबीर टग टग चोघताँ, पल पल गई बिहाइ।
जीव जँजाल न छाड़ई, जम दिया दमामा आइ।।7।।
मैं अकेला ए दोइ, जणाँ छेती नाहीं काँइ।
जे जम आगै ऊबरो, तो जुरा पहूँती आइ।।8।।
बारी–बारी आपणीं, चेले पियारे म्यंत।
तेरी बारी रे जिया, नेड़ी आवै निंत।।9।।
दों की दाधी लाकड़ी, ठाढ़ी करै पुकार।
मति बसि पड़ौं लुहार के, जालै दूजी बार।।10।।
जो ऊग्या सो आँथवै, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिणियाँ सो ढहि पड़े, जो आया सो जाइ।।11।।
जो पहरया सो फाटिसी, नाँव धरया सो जाइ।
कबीर सोइ तत्त गहि, जो गुरि दिया बताइ।।12।।
निधड़क बैठा राम बिन, चेतनि करै पुकार।
यहु तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार।।13।।
पाँणी केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति।
एक दिनाँ छिप जाँहिंगे, तारे ज्यूँ परभाति।।14।।
कबीर यहु जग कुछ नहीं, बिन षारा षिन मीठ।
काल्हि जु बैठा माड़ियां, आज नसाँणाँ दीठ।।15।।
कबीर मंदिर आपणै, नित उठि करती आलि।
मड़हट देष्याँ डरपती, चौड़े दीन्हीं जालि।।16।।

मंदिर माँहि झबूकती, दीवा केसी जोति।
हंस बटाऊ चलि गया, काढ़ौ घर की छोति।।17।।
ऊँचा मंदिर धौलहर, माटी चित्री पौलि।
एक राम के नाँव बिन, जँम पाड़गा रौलि।।18।।
कबीर कहा गरबियो, काल गहै कर केस।
नाँ जाँणै कहाँ मारिसी, के घर के परदेस।।19।।
कबीर जंत्रा न बाजई, टूटि गए सब तार।
जंत्रा बिचारा क्या करै, चलै बजावणहार।।20।।
धवणि धवंती रहि गई, बुझि गए अंगार।
अहरणि रह्या ठमूकड़ा, जब उठि चले लुहार।।21।।
पंथी ऊभा पंथ सिरि, बुगचा बाँध्या पूठि।
मरणां मुँह आगै खड़ा, जीवण का सब झूठ।।।22।।
यहु जिव आया दूर थैं अजौ भी जासी दूरि।
बिच के बासै रमि रह्या, काल रह्या सर पूरि।।23।।
राम कह्या तिनि कहि लिया, जुरा पूहँती आइ
मंदिर लागै द्वार यै, तब कुछ काढणां न जाइ।।24।।
बरिया बीती बल गया, बरन पटट्या और।
बिगड़ीबात न बाहुणै, कर छिटक्याँ कत ठौर ।।25।।
बरिया बीती बल गया, अरू बुरा कमाया
हरि जिन छाडै हाथ थैं, दिन नेड़ा आय ।।26।।
कबीर हरि सूँ हेत करि, कूडै चित्त न लाव।
बाँध्या बार षटीक के, तापसु किती एक आव ।।27।।
बिष के बन मैं घर किया, सरप रहे लपटाइ।
ताथै जियरे डरै गह्या, जागत रैणि बिहाड़।।28।।
कबीर सब सुख राम है, और दुखाँ की रासि।
सुर नर मुनिवर असुर सब, पड़े काल की पासि।।29।।
काची काया मन अथिर, थिर थिर काम करता
ज्यूँ ज्यूँ नर निधड़क फिरै, त्यूँ त्यूँ काल हसंत।।30।।
रोवणहारे भी मुए, मुए जलाँवगहार

हा हा करते ते मुए, कासनि करौं पुकार।।31।।

जिनि हम जाए ते मुए, हम भी चालणहार।

जे हमको आगै मिलै, तिन भी बंध्या मार।।32।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिय गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'काल कौ अंग' साखी का 24वां अंग है, जिसमें कुल 32 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी ने मृत्यु के विभिन्न रूपों और उसकी भयावहता पर प्रकाश डाला है।

दोहा सं. 7

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे मानव! टकटकी लगाकर देखते हुए और उदर पूर्ति करते हुए तुम्हारी सारी आयु व्यतीत हो गई है अर्थात मानव अपना सारा जीवन पेट भरने में ही गुजार देता है तथा भगवान की भक्ति नहीं करता। जीव इस संसार के बंधनों से अभी तक मुक्त नहीं हो सका और उसका अंतिम समय आ गया है। अब तो मृत्यु ने भी आकर कूच करने का नगाड़ा बजा दिया है। भाव यह है कि हे मानव ! अब इस संसार से विदा होने का तुम्हारा समय आ गया है।

दोहा सं. 10

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि दावाग्नि में जली हुई लकड़ी (कोयला बनी) खड़ी–खड़ी भगवान से पुकार कर कहती है अब मैं कोयला बन कर कहीं लुहार के बस में न पड जांऊ, क्योंकि मैं यदि लुहार के हाथ पड़ गई तो वह मुझे जलाएगा। लुहार कायला जलाकर अपनी भट्ठी गर्म करता है। इसलिए उसे दो बार जलना पडता है। पहले वह जल कर कोयला बन जाती है और फिर कोयले से राख बन जाती है।

दोहा सं. 13

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि ज्ञानी का शुद्ध अंतःकरण जीव से पुकार कर कहता है कि हे जीव ! तू राम के बिना निश्चिंत होकर क्यों बैठा है? अर्थात तू भगवान की भक्ति कर। उसी में तुम्हारा कल्याण है। यह शरीर तो पानी के बुलबुले के समान है। इसके नष्ट होने में देर नहीं लगती। भाव यह है कि साधक को ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। पता नहीं कब जीवात्मा शरीर को छोड़ कर चली जाए।

दोहा सं. 19

व्याख्या

कबीर साहब जी सांसारिक प्राणी को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि हे मानव! तुम इस संसार में किस बात पर अभिमान कर रहे हो। मृत्यु ने तो तुम्हारे बालों को हाथ से पकड़ रखा है। पता नहीं यह काल तुम्हें कहां मारेगा? घर पर या विदेश में। कहने का भाव है कि मृत्यु का समय, स्थान तथा विधि निश्चित नहीं होती। यह जहां चाहे प्राणी को मार सकता है। अतः मनुष्य को घमंड नहीं करना चाहिए।

दोहा सं. 29

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि सभी सुखों की राशि एकमात्र प्रभु का नाम है। उसके स्मरण से ही मनुष्य को आनंद तथा सुखों की प्राप्ति होती है। अन्य सभी कार्य तो दुखों का समूह हैं अर्थात नाम स्मरण के अतिरिक्त अन्य जितने भी कार्य किए जाते हैं उन सब से मनुष्य को दुख की ही प्राप्ति होती है। कबीर साहब जी पुनः कहते हैं कि देवता, मुनि, राक्षस आदि सभी काल के बंधन में जकड़े हुए हैं। सभी को मृत्यु का शिकार बनना है। कोई भी मृत्यु के बंधन से मुक्त नहीं हो सकता। अतः मनुष्य को राम नाम का स्मरण करना चाहिए।

1.25 कस्तूरियाँ मृग कौ अंग

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढे बन माँहि।
ऐसै घटि घटि रॉम हैं, दुनियाँ देखै नाँहि।।1।।
कोइ एक देखै संत जन, जाँके पाँचूँ हाथि।
जाके पाँचूँ बस नहीं, ता हरि संग न साथि।।2।।
सो साईं तन में बसै, भ्रम्यों न जाणै तास।
कस्तूरी के मृग ज्यूँ, फिरि फिरि सूंघे घास।।3।।
कबीर खोजी राम का, गया जु सिंघल दीप।
राम तौ घट भीतर रमि रह्या, जो आवै परतीत।।4।।
घटि बधि कहीं न देखिए, ब्रह्म रह्या भरपूरि।
जिनि जान्या तिनि निकट है, दूरि कहैं थे दूरि।।5।।
मैं जाँण्याँ हरि दूरि है, हरि रह्या सकल भरपूरि।
आप पिछाँणै बाहिरा, नेड़ा ही थें दूरि।।6।।
तिणके ओल्हे राम है, परबत मेहैं भाइ।
सतगुर मिलि परचा भया, तब हरि पाया घट माँहि।7।।
राम नाम तिहूँ लोक मैं, सकलहु रह्या भरपूरि।
यह चतुराई जाहु जलि, खोजत डोलैं दूरि।।8।।
ज्यूँ नैनूँ मैं पूतली, त्यूँ खालिक घट माँहि।
मूरखि लोग न जाँणहिं, बाहरि ढूँढण जाँहि।।9।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'कस्तूरियां मृग कौ अंग' साखी का 25वां अंग है, जिसमें कुल 9 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी मनुष्य की मृग– मरीचिका का वर्णन किया है। कबीर साहब कहते हैं कि ईश्वर तो प्रत्येक के हृदय में निवास के लोग भ्रमवश उसको यहां–वहां ढूंढ़ते रहते हैं।

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि परमात्मा प्रत्येक हृदय में निवास लेकिन भ्रम के कारण व्यक्ति उसे पहचान नहीं पाता। जैसे कस्तूरी मृग की। है लेकिन वह बार–बार घास को सूंघ कर उसे ढूंढ़ता फिरता है। इसी प्रकार मानव भी परम तत्व को बाहर संसार में खोजता है।

दोहा सं. 8

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि राम का नाम तो तीनों लोको है। आकाश–पाताल तथा पृथ्वी ये तीन लोक माने गए हैं। इन तीनों में ईश्वर निवास करता है। कबीर साहब जी कहते हैं कि ऐसी चतुरता तो नष्ट ही हो जाए तो अच्छा है जो प्रभु को दूर खोजती फिरती है।

1.26 निंद्या कौ अंग

लोगे विचारा नींदई, जिन्ह न पाया ग्यॉन।
रॉम नॉव राता रहै, तिनहूँ, न भावै ऑन।।1।।
दोख पराये देखि करि, चल्या हसंत हसंत।
अपने च्यँति न आवई, जिनकी आदि न अंत।।2।।
निंदक नेड़ा राखिये, ऑगणि कुटी बँधाइ।
बिन साबण पॉणी बिना, निरमल करै सुभाइ।।3।।
न्यंदक दूरि न कीजिये, दीजै आदर मॉन।
निरमल तन मन सब करै, बकि बकि ऑनहिं ऑन।।4।।
जे को नींदे साध कूँ, संकटि आवै सोइ।
नरक मॉहि जॉमैं मरें, मुकति न कबहूँ होइ।।5।।
कबीर घास न नींदिये, जो पाऊँ तलि होइ।
उड़ि पड़े जब ऑखि में, खरा दुहेली होडी।।6।।
आपन यौं न सराहिए, और न कहिए रंक।
नॉ जॉणौं किस ब्रिष तलि, कूड़ा होड़ करंक।।7।।
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोई
आप ठग्यॉ सुख ऊपजै, और ठग्यॉ दुख होइ।।8।।
अब के जे साईं मिलैं, तौ सब दुख आपौ रोइ
चरनँ ऊपर सीस धरि, कहूँ ज कहणॉ होइ।।9।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिया गया है। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'निद्या कौ अंग' साखी का 26वां अंग है, जिसमें कुल 9 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी ने लोगों द्वारा परनिंदा किए जाने की कड़ी आलोचना की है, लेकिन एक निंदक के महत्व को भी प्रतिपादित किया है।

दोहा सं. 4

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि निंदक को अपने से दूर कभी नहीं रखा चाहिए। बल्कि उसे तो समुचित आदर मान देकर हमेशा अपने समीप रखना चाहिए कारण यह है कि वह हमारे दोषों को बार–बार कहकर हमारे शरीर तथा मन को स्वच्छ एवं पवित्र कर देता है। निंदक का काम है लोगों के झूठे–सच्चे दोष खोजना। परंतु साधक के लिए निंदक लाभकारी है, क्योंकि वह उसके दोषों का बार–बार उल्लेख करता है।

दोहा सं. 8

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि हे संतजनो! तुम भले ही स्वयं ठगे जाओ पर दूसरों को कभी मत ठगो अर्थात तुम भले ही धोखा खा जाओ, पर दूसरों को धोखा देने से उनके ऐश्वर्य की हानि होती है। अतः संत के लिए यह दुख का कारण है। उसकी। आत्मा उसे कचोटती रहती है। इसलिए कवि ने स्वयं ठगे जाने को प्रशंसनीय कहा है।

1.27 बेलि कौ अंग

अब तो ऐसी ह्वै पड़ी, नाँ तूँ बड़ी न बेलि।
जालण आँणी लाकड़ी, ऊठी कूँपल मेल्हि।।1।।
आगै आगै दौं जलें, पीछे हरिया होइ।
बलिहारी ता विरष की, जड़ काट्याँ फल होइ।।2।।
जे काटौ तो डहडही, सींचौं तौ कुमिलाइ।
इस गणवंती बेलि का, कुछ गुंण कहाँ न जाइ।।3।।
आँगणि बेलि अकासि फल, अण ब्यावर का दूध।
ससा सींग की धूनहड़ी, रमै बाँझ का पूत।।4।।
कबीर कड़ई बेलड़ी, कड़वा ही फल होइ।
साँध नाँव तब पाइए, जे बेलि बिछोहा होइ।।5।।
सींध भइ तब का भया, चहूँ दिसि फूटी बास।
अजहूँ बीज अंकूर है, भीऊगण की आस।।6।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिया गया है। इस ग्रंथ

में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'बेलि कौ अंग' साखी का 27वां अंग है, जिसमें कुल 6 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी ने सांसारिक विकारों का वर्णन किया है।

दोहा सं. 5

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि माया कचरी की बेल है जो कड़वी होती है। इस पर लगने वाले कचरी आदि फल भी मूलतः कड़वे होते हैं। जिस प्रकार कचरी का फल पकने पर बेल से अपने आप अलग होकर मीठा तथा सुगंधपूर्ण हो जाता है तब उसका नाम सेंध पड़ जाता है। इसी प्रकार से जब साधक माया से अलग हो जाता है तो वह सिद्ध कहलाता है और उसमें से भक्ति तथा ज्ञान की सुगंध फूटने लगती है।

1.28 अबिहड़ कौ अंग

कबीर साथी सो किया, जाके सुख दुख नहीं कोई।

हिलि मिलि है करि खेलिस्यूँ कदे बिछोह न होइ।।

कबीर सिरजनहार बिन, मेरा हितू न कोइ।

गुण औगुण बिहड़े नहीं, स्वारथ बंधी लोइ।।2।

आदि मधि अरु अंत लौं, अबिहड़ सदा अभंग।

कबीर उस करता की, सेवग तजै न संग।।3।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहे डॉ. श्याम सुंदर दास द्वारा संपादित ग्रंथ 'कबीर ग्रंथावली' के 'साखी' खंड से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में कबीर द्वारा रचित कुल 809 दोहों को 59 अलग–अलग अंगों में बांटा गया है। 'अबिहड़ कौ अंग' साखी का 28वां अंग है, जिसमें कुल 3 दोहे संकलित हैं। इनमें कबीर साहब जी जी ने लोगों को परमब्रह्म का साथ कभी न छोड़ने की सलाह दी है।

दोहा सं. 2

व्याख्या

कबीर साहब जी कहते हैं कि उस परमात्मा के बिना मेरा और कोई हितैषी नहीं है। संसार के अन्य प्राणी सभी स्वार्थी हैं। वे अपने स्वार्थ के कारण ही मेरी देखभाल करते हैं। लेकिन वह परमात्मा मुझे गुणयुक्त या गुणहीन होने पर भी किसी हालत में ही त्याग नहीं करेगा। इसलिए वह ईश्वर ही मेरा हित चाहने वाला है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

4. साखी के किस अंग में कबीर के चेतावनी भरे दोहों को संकलित किया गया है?
5. साधु व्यक्ति या सुसंगति का महत्व किस अंग की साखियों से दृष्टिगोचर होता है?
6. कबीर साहब द्वारा मृत्यु के विभिन्न रूपों का वर्णन जिन दोहों में मिलता है उन्हें किस अंग में संकलित किया गया है?

सारांश

भारतीय साहित्येतिहास में भक्तियुगीन कवियों का विशेष स्थान है। निर्गुण भक्ति शाखा के प्रमुख हस्ताक्षर कबीर साहब ने एक समाज सुधारक की भूमिका निभाई और अपनी रचनाओं से विभिन्न प्रकार के आडंबरों, पाखंडों तथा मानवीय कमजोरियों पर वज्रपात किया। इस इकाई में हमने कबीर के दोहों का समग्र अध्ययन किया। डॉ. श्यामसुंदर दास ने कबीर ग्रंथावली में 'साखी' खंड के अंतर्गत कबीर साहब के 809 दोहों को विभिन्न भावों के आधार पर 59 अंगों में संकलित किया है। आपके पाठ्यक्रम में इनमें से 28 अंगों का अध्ययन निर्धारित है। इन 28 अंगों की साखियों की व्याख्या से हमने समझा कि कबीर ने सांसारिक भोगलिप्साओं, विषय–वासनाओं, माया–मोह आदि की भर्त्सना करते हुए लोगों को इससे सावधान रहने की चेतावनी दी है, और प्रभु–भक्ति को जीवन का मुख्य ध्येय बताया है। कबीर ने अपने दोहों के माध्यम से सच्चे साधु का चरित्र, संगति, कुसंगति का महत्व एवं सद्गुरु की महिमा का वर्णन किया है।

कबीर सच्चे अर्थों में एक युगांतरकारी साहित्यकार थे क्योंकि उन्होंने समाज में व्याप्त अनेकानेक बुराइयों को न सिर्फ रेखांकित किया अपितु उनकी कठोर आलोचना भी का। कबीर के ये दोहे 'गागर में सागर' अद्वितीय मिसाल हैं।

खंड –(ख)
आलोचना खण्ड

1. भक्ति आंदोलन और कबीर

भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'भज्' धातु में 'कितन' प्रत्यय के योग से हुई है। भज् धातु का अर्थ है सेवा करना, अतः इसमें सेवा से सम्बद्ध श्रद्धा, अनुरक्ति, समर्पण इत्यादि सभी प्रकार के भाव आ जाते हैं। इन सभी भावों के मूल में प्रेम किसी न किसी रूप में वर्तमान रहता है। अतः 'भक्ति' का निष्पादक तत्त्व प्रेम है। इसके अभाव में भक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। प्रेम का आधारभूत तत्त्व श्रद्धा है। ये दोनों सहचारी भाव है। अतः भक्ति में श्रद्धा और प्रेम के अत्यन्त परिष्कृत, सात्विक और उदात्त रूप में दर्शन होत हैं। भक्ति का प्रभाव व्यक्ति पर इतना व्यापक रहता है कि वह ऊँच–नीच के भेदों को तुच्छ कर देता है। भक्ति राजनीतिक प्रभुत्व को नकारने का आलम्बन देती है। वह मनुष्य के भीतर रिश्तों को सही पहचान देकर दिशा देती है। भक्ति विश्वास जगाती है। सर्जनात्मक कलाओं को रस से सँजोती है। वह संसार के प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक प्राणी के साथ गहरी रिश्तेदारी का बोध जगाती है।

इसी 'भक्ति' शब्द में 'आन्दोलन' शब्द जुड़ा है। यह 'भक्ति आन्दोलन' शब्द बहुत ही उचित और समीचीन भी है। कई विद्वानों ने तथा इतिहासकारों ने भक्ति के इस नवीन मार्ग को 'आन्दोलन' (मूवमेन्ट) या धर्म सुधार (रिलीजय रिफार्म) या नवजागरण का नाम दिया है। उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार स्वामी रामानन्द ने किया। रामानन्द से आरम्भ होकर 'भक्ति–आन्दोलन' आगे बढ़ा।

भक्तिकाल से हमारा मतलब उस काल से हैं जिसमें मुख्यत भागवत धर्म का प्रचार व प्रसार हुआ। इसी से भक्ति आंदोलन विकसित हुआ। इस आंदोलन ने भारतीय संस्कृति का सम्यक विकास प्रस्तुत किया। इस आंदोलन ने देश के जन जीवन को एक नई दिशा प्रदान की। वहीं नहीं इसने देश की अखण्डता और सभी देशवासियों के कल्याण और मानव के सम्मान अधिकारों के लिए भी संघर्ष किया। इस संदर्भ में एम जार्ज ने उचित ही कहा है– नैतिक, सामाजिक, साहित्यिक व राजनैतिक जीवन भक्तों की जो देन है। उसका ठीक–ठीक मूल्यांकन किए बिना, हम भारतीय संस्कृति के मेरू को नहीं पहचान सकते।

भक्ति आंदोलन के प्रादुर्भाव को लेकर विद्वानों ने अलग–2 विचार व्यक्त किए है। अन्य विद्वानों का मत है कि हिंदी युग में भक्ति युग का आविर्भाव राजनैतिक पराजय का परिणाम है। अन्य विद्वान इसे एक अविच्छिन, सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक भावना का परिणाम मानते हैं। वस्तुतः इस आंदोलन में विचार और गहराई दोनों दृष्टियों से जन–मानस को इतना अधिक प्रभावित किया कि उसके क्रांतिकारी रूप को देखकर विद्वान उसके उद्भव और विकास के बारे में चिंतन करने लगे। पाश्चात्य विद्वानों, वेबर, कीथ, ग्रियसेन और विल्सन आदि ने घोषणा कर दी कि यह भक्ति ईसाई धर्म की देन है। उधर भारतीय विद्वानों में एच. राय चौधरी, बाल गंगाधर तिलक आदि ने पाश्चात्य विद्वानों के मत का खंडन किया और भक्ति के मूल उद्गम को भारतीय स्त्रोंतों में ढूंढने का प्रयास किया।

भक्ति आंदोलन के महत्व को रेंखांकित करते हुए ग्रियसेन ने लिखा भी है – ''बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त पुराने धार्मिक मतों के अंधकार के ऊपर एक नई बात दिखाई दी है। कोई हिंदू यह नहीं जानता कि यह बात कहां से आई और कोई भी इसके प्रादुर्भाव का काल निश्चित नहीं कर सकता।

उतर भारत में भक्ति का विकास

हमारे देश में शिव और कृष्ण की उपासना प्राचीन काल से चली आ रही है। यह ध्रुव सत्य है कि भक्ति पूर्णतया भारतीय परिवेश की ही देन है। वैदिक साहित्य में इसकी पुष्टि के अनेक प्रमाण मिल जाते हैं। वस्तुतः वेदों के अतिरिक्त उपनिषदों, गीतों, महाभारत, तथा पुराणों आदि में भी भक्ति के सिद्धांत प्रचुर मात्रा में मिल जाते हैं। फिर भी आलवार भक्तों के काल में भक्ति आंदोलन का आरंभ हो चुका था। इनका समय ईसा की पांचवी शती एवं 8वीं शती में शंकराचार्य का आर्विर्भाव हुआ जिसके फलस्वरूप हिंदू धर्म को विशेष बल प्राप्त है। रामधारी सिंह दिनकर ने भक्ति का उद्भव द्रविड़ों की देन स्वीकार किया है। आधुनिक काल के शोधकार्य ये यह सिद्ध हुआ है कि भक्ति का मूल द्रविड़ों से है।

परन्तु ये द्रविड़ केवल दक्षिण भारत के नहीं अपितु उनके महान पूर्वज मोहनजोदड़ों और हडप्पा के द्रविड़ भी है। ये लोग एकेश्वरवादी थे और उनका ईश्वर शिव था। अतः भारतीय साधना पद्धति में भक्ति की परंपरा लंबे काल से चली आ रही है। भक्ति का प्रतिपादन महाभारत और गीता में स्पष्ट रूप से हुआ है। महाभारत के शांति पर्व और भीष्म पर्व में नारायणोपाख्यान का वर्णन है। इसी प्रकार से नारद भक्ति सूत्र और उससे पूर्व भक्ति सूत्र में भी भक्ति के स्वरूप का सांगोपांग विवेचन हुआ है। व्यावहारिक रूप में भक्ति का विकास पौराणिक साहित्य में भी मिलता है। आठवीं और नवीं शताब्दियों तक पौराणिक धर्म का पूर्ण प्रचार हो चुका था। कुमारिलभटट और शंकराचार्य ने भले ही भक्ति के विकास में जो कुछ बाधा उत्पन्न की हो लेकिन दक्षिण भारत के वैष्णवों ने भक्ति प्रचार–प्रसार का पूरा–पूरा प्रयास किया। डॉ मुंशीराम शर्मा ने स्वीकार किया है भक्ति के तत्व वैदिक मंत्रों में सुरक्षित है। डॉ रामरतम भटनागर ने सिद्ध किया है कि गुप्तकाल में विष्णु और लक्ष्मी को लेकर जिन धार्मिक भावनाओं का विकास हुआ था वे ही कालांतर में राधाकृष्ण और सीताराम के रूप में विकसित हुए।

आलवार भक्तों का योगदान

दक्षिण भारत में आलवार भक्त हुए थे। जिन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद की परवाह न करते हुए भक्ति की धारा को आगे बढ़ाया। डॉ द्विवेदी ने भक्ति आंदोलन का श्रेय उन्हीं आलवार भक्तों को दिया है। इनकी संख्या 12 मानी जाती है। इनमें एक नारी भक्तिन हो चुकी थी, जो मीरा के समान कृष्ण को अपना पति मानती थी। इन्हीं की परंपर में 10वीं 11वीं शताब्दी में आदिनाथ मुनि हुए जिन्होंने वैष्णव भक्ति के लिए संगठन पर बल दिया और आलवारों के भक्तिपूर्ण, गीतों का संग्रह किया। प्रमुख आलवारों का समय ईसा की पहली शताब्दी से नवीं शताब्दी तक माना गया है। 'नलियार प्रबंधक' इनकी प्रमुख रचना है।

जिसे तमिल वेद की संज्ञा दी गई है। आलवारों के उत्तराधिकारों के रूप में रामानुजाचार्य हुए जिन्होंने विशिष्टाद्वैतवाद की स्थापना की और भगवान विष्णु की उपासना पर जोर दिया और दास्य भाव भक्ति का प्रचार किया। इसी परंपरा में रामानंद हुए, जिन्होंने उतरी भारत में राम भक्ति का प्रचार किया।

इसी प्रकार से महाराष्ट्र के संतों ने सामान्य भक्ति मार्ग की स्थापना की। इसी के फलस्वरूप आगे चल कर कबीर, दादू नानक आदि संतों की भक्ति के स्वरूप का विकास हुआ। महाराष्ट्रीय संतों ने भी ईश्वर के सगुण व निर्गुण दोनों रूपों में उपासना का आधार बताया है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है। कि भक्ति आंदोलन भारतीय भक्ति चिंतन की विविध धारणाओं का समन्वित रूप है। इसे न तो राजनीतिक पराजय का परिणाम कहा जा सकता है और न ही ईसाईयत की देन कहा जा सकता है। तथा न ही मुस्लिम संस्कृति के संपर्क की देन कहा जा सकता है। अतः हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह मत समाचीन है।

''कुछ विद्वानों ने इस भक्ति आंदोलन को हारी हुई हिन्दू जाति के असाहय चित्र की प्रतिक्रिया के रूप में

बताया है। यह बात ठीक नहीं कि प्रतिक्रिया तो जातिगत कठोरता और धर्मगत संकीर्णता के रूप में प्रकट हुई। भक्ति मतवाद ने इस अवस्था को संभाला और हिंदूओं में नवीन और उदार आशावादी भाव प्रतिष्ठित की। वास्तव में भक्तिकाल का साहित्य प्राचीन दर्शन की एक अविच्छिन धारा है।''

कबीर की भूमिका

कबीर साहब भक्ति आंदोलन के सर्वाधिक प्रमुख कवि है। उनकी वाणी से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि वे एक उदार हदय भक्त कवि थे। कुछ समाजशास्त्रियों का निष्कर्ष है कि भक्ति आंदोलन समाज सुधार की लहर का प्रतीक है। यदि हम इसे सत्य मान लें, तो कबीर साहब ही सच्चे सुधारक सिद्ध होते हैं। इस दृष्टि से वे एक महान कवि भी सिद्ध हो जाते हैं। अतः भक्ति आंदोलन का इतिहास कबीर की भूमिका के बिना अधूरा है। उन्होंने जहाँ एक ओर समाज परिवर्तन की नींव डाली वहीं दूसरी ओर नवीन धार्मिक विश्वास को भी बल प्रदान किया।

कबीर एक धर्म निरपेक्ष संत थे। हिंदू मुसलमान दोनों उनके लिए समान थे। इस दिशा में उन्होंने सामूहिक आंदोलन का श्री गणेश किया और सफलता भी अर्जित की। कबीर का सत्य, आंदोलन सामाजिक आर्थिक राजनैतिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने रूढिग्रस्त परंपरागत मूल्यों को बदल डाला। समाज में जहां कही उनको त्रुटि दिखाई दी उसका निर्भीकता से खण्डन किया। डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी के शब्दों में– निर्गुण धारा के प्रमुख कवि के रूप में कबीर पर्याप्त विख्यात है। इन्होंने भक्ति आंदोलन के विषय में विस्तार से अपने मत प्रकट किए है। भारतीय धर्म साधना के इतिहास में कबीर साहब ऐसे महान विचारक एवं प्रतिभाशाली महाकवि है जिन्होंने शताब्दियों की सीमा का उल्लंघन कर दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित किया।

भक्ति आंदोलन का इतिहास कबीर के बिना अधूरा है। कबीर के सामाजिक और धार्मिक विश्वास भक्ति आंदोलन की नींव है। वाणी के सर्वोच्च अधिकारी कबीर भाषा का इस तरह प्रयोग करते रहे कि उनके दोहे, शब्द, साखियां जनसाधारण तक पहुंच गई। भक्ति की लहर इस वाणी के द्वारा भारत के कोने–कोने तक पहुंची।''

कबीर साहब ने जिस भक्ति आंदोलन को चलाया वह पूर्णतया व्यावहारिक था। इसका उद्देश्य समाज को धार्मिक पाखंडों से छुटकारा दिलाना था। उनकी वाणी इस तथ्य को प्रमाणित करती है। उन्होंने हिंदू–मुस्लिम दोनों ही धर्मों के कर्मकांड़ों पर प्रहार किया और मूर्तिपूजा करने वालों का तीव्र विरोध किया, वे कहते भी है कि–

हिंदू कहे मोहि राम पिआरा
तुरक कहे रहिमाना
कबिरा लड़ि–लड़ि दोऊ मुए,
मरम काहूं न जाना।।

हिंदुओं को फटकारते हुए वे कहते हैं कि–

पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार।
ताते यह चक्की चली पीस खायो संसार।।
मूंड मुंडाये हरि मिलै तो सब कोई ले मुंडाय।।

मुसलमानों के अंधानुकरण पर भी प्रहार करते हुए वे कहते हैं कि–

कांकर–पाथर जोरि के मस्जिद लई चुनाय।
तां चढ़ि मुल्ला बांग दे कया बहिरा हुआ खुदाय।।

कबीर पूर्व सामाजिक स्थिति

भक्तिधारा के प्रवाहित होने से पहले तत्कालीन भारतीय जनता जाति–पाति, जादू टोने तथा तंत्र मंत्र में विश्वास रखती थी। किसी के भी मन में भगवान के प्रति सच्ची श्रद्धा नहीं थी। भगवान के निर्गुण व सगुण दो रूप विकसित हो चुके थे परन्तु बाह्य आंडबरों और अंधविश्वासों के कारण जन साधारण भक्ति से दूर हो गया था। इस अवसर पर शैवों और शास्त्रों में द्वेष भावना उत्पन्न हो चुकी थी और हिंदू–मुसलमान भी आपस में संघर्षरत थे। आर्थिक विषमता के कारण समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग, उपेक्षा, अवहेलना तथा तिरस्कार, गरीबी का शिकार बना हुआ था। कबीर साहब ने केवल युगद्रष्टा भक्त कवि थे बल्कि विद्रोही समाज चेता भी थे। रामानंद उनके गुरू थे। अतः उन्हीं से प्रेरणा लेकर उन्होंने भक्ति आंदोलन को समाज सुधार के साथ जोड़ दिया। उन्होंने तत्कालीन मुसलमान शासकों की परवाह न करते हुए मुस्लिम धर्म के अंधविश्वासों की निर्भिकता के साथ निंदा की। माया का त्याग, एकेश्वरवाद की स्थापना, संतों की संगति, विनम्रतापूर्ण व्यवहार, जाति का विरोध, लोभ तथा अंत का परित्याग और मेहनत करना आदि कबीर के मूलभूत सिद्धांत थे। कबीर साहब और उनके परवर्ती कवियों ने जनता में इन्हीं सिद्धांतों का प्रचार–प्रसार किया। डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी के शब्दों में, ''कबीर ने अपने धर्म में एक मध्यम वर्ग का अवलंबन लिया है। उन्होंने हिंदू मुसलमान दोनों धर्मों का खण्डन किया। परन्तु दोनों का समर्थन भी प्राप्त किया है। अपने आपकों दोनों के विरोध से बचाया भी है। कबीर वेश भूषा बदलने को वैराग्य नहीं मानते। उनका कथन है कि मनुष्य को तन से वैराग्य धारण न करके मन से धारण करना चाहिए।

निर्गुण ब्रह्म की भक्ति पर बल

भक्ति आंदोलन के कारण उतर भारत में निर्गुण व सगुण दोनों प्रकार की भाव–धाराओं का प्रचार–प्रसार हुआ। सगुण भक्ति काव्य–धारा के अंतर्गत सूरदास और तुलसीदास के नाम उल्लेखनीय है। ये दोनों कबीर साहब के बाद हुए। कबीर साहब ने ईश्वर की निर्गुण निराकार वंदना पर बल दिया है। कबीर का राम दशरथ का पुत्र नहीं वह तो निर्गुण राम है। और प्रत्येक व्यक्ति के हदय में बसता है।

> दशरथ सुत तिहूं लोक बखाना।
>
> रामनाम का मरम न जाना।

उतरी भारत के भक्ति आंदोलन के इतिहास में कबीर के विचार का विशेष महत्व है। वे सचमुच एक महान परिवर्तन लाना चाहते थे। वे अछूत समझे जाने वाले अभावग्रस्त और उपेक्षित लोगों को समाज की मुख्य धारा के साथ जोड़ना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने ईश्वर के उसी रूप की भक्ति पर बल दिया जो समाज के सभी वर्गों के लिए स्वीकार्य हो। परन्तु उन्होंने इस बात पर भी बल दिया की जो साधक राम को ढूंढता है वही उसे पा सकता है।

> जिन ढूंढ़ा तिन पाईया, गहरै पानी पैठ।
>
> जौ वोरा डुबन डरा, रहा किनारे बैठ।।

कबीर की दृष्टि में सब समान हैं। छोटा–बड़ा, ऊँच–नीच, यह सब समाज का बनाया हुआ है। ईश्वर की दृष्टि में सब समान है। जो निर्गुण भगवान की भक्ति करता है वह उसे पा सकता है। लेकिन उस निर्गुण ब्रह्म को पाने के लिए वे गुरू को आवश्यक मानते हैं। गुरू ही साधक को सच्चा मार्ग बताता है। इसलिए गुरू के बिना साधक को सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। कबीर साहब जी कहते हैं।

> "बलिहारी गुरु आपणैं धौ हाड़ी के बार
>
> जिनि मानिष तै देवता, करता न लागी वार।।"

कबीर साहब ने ही सबसे पहले घोषणा की थी सभी प्राणी ईश्वर की संतान है। सभी मनुष्य समान है। जाति, और धर्म का कोई भेद नहीं है। इसीलिए वे सभी की खैर मनाते हैं। मतलब न तो किसी के साथ दोस्ती है और न किसी के साथ दुश्मनी।

"कबीरा खड़ा बाजार में मांगे सब की खैर
न काहू से दोस्ती न काहू से बैर।।"

भक्तिकाल के निर्गुण संत कवियों का योगदान

भक्ति की धारा का सही विकास तो रामानंद और वल्लभाचार्य के प्रयत्नों के कारण हुआ। यह भक्ति आंदोलन निर्गुन भक्ति धारा और सगुण भक्ति धारा दो धाराओं में बंट गया। निर्गुण भक्ति धारा की परम्परा में रामानंद, नामदेव, कबीर, नानक, निम्बार्क, रैदास आदि के नाम गिनवाए जा सकते है। उतर भारत के भक्ति आंदोलन पर निम्बार्क का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। ये भले ही तेलगू .... थे लेकिन इन्होंने वृंदावन को अपना मुख्य कार्य–क्षेत्र बनाया है। रामानंद मध्ययुग के यशस्वी साधक, संचालक और प्रगतिशील विचारक थे। इनकी एक लंबी शिष्य परम्परा देखी जा सकती है। इनका आविर्भाव 14वीं शती के अंतिम चरण में हुआ। कबीर और पीपा इन्हीं के शिष्य थे। राम भक्ति को लोकप्रिय बनाने का श्रेय इन्हीं को दिया जाता है।

सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरू नानक देव (1465–1539) ने पंजाब तथा उसके निकटवर्ती प्रदेशों में भक्ति आंदोलन चलाया। इनके जीवन काल में उनके द्वारा स्थापित संप्रदाय एक व्यापक संगठन का रूप धारण कर चुका था। नानकदेव एक समन्वयशील और उदार व्यक्ति थे। अन्य धार्मिक विचारधाराओं के प्रति भी उनके मन में श्रद्धा की भावना थी। 'जपुजी साहिब' उनके दर्शन का सार तत्व है। इनकी शिष्य परंपरा काफी लंबी है। नामदेव भी अपने संप्रदाय के प्रचारक थे। इन्होंने महाराष्ट्र से लेकर पंजाब तक सारे उतर भारत में अपने संप्रदाय का प्रचार किया। इनके कुछ पद 'आदिग्रंथ में संकलित हैं। इनकी रचनाओं में भेदभाव हीनता, ब्रह्म का निर्गुण स्वरूप, समाज सुधार प्रेम साधना आादि विशेषताएं देखी जा सकती है।

मध्ययुगीन साधकों में रैदास का विशेष स्थान है। निम्न वर्ग में जन्म लेने के बावजूद उनकी जीवन शैली और साधना शैली श्रेष्ठ है। भक्ति आंदोलन के विकास में उनका विशेष महत्व है। इन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा आदि बाह्य आंडबरों का विरोध करके आंतरिक साधना पर बल दिया।

निष्कर्ष

उतर भारत के भक्ति आंदोलन में कबीर के विचारों तथा व्यक्तित्व का विशेष महत्व है। उन्होंने अपने सिद्धांतों के प्रचार–प्रसार के लिए कोई संगठन नहीं बनाया। परन्तु उनके शिष्यों ने अपने गुरू की इस कमी को पूर्ण करने का प्रयास किया। सुरत गोपाल और धर्मदास उनके प्रधान शिष्यों में उल्लेखनीय है। उन्होंने भी कबीर साहब का अनुसरण करते हुए जाति–पाति के भेदभाव को मिटाने तथा कर्मकाण्डों के विरोध का भरसक प्रयास किया। उनका उद्देश्य हिंदु–मुस्लिम एकता की स्थापना करना था। कबीर की धार्मिक भावना ने भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में स्वर्ण युग की स्थापना की। यद्यपि रामानंद से सांस्कृतिक जागरण की परम्परा शुरू हुई थी लेकिन कबीर साहब ने अपने धार्मिक विचारों द्वारा इस आंदोलन को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। भक्ति आंदोलन के कबीर साहब ही एक ऐसे कवि है जो अपनी सरल वाणी तथा मानवतावादी धार्मिक सिद्धांतों के कारण जनसाधारण में लोकप्रिय हुए। विशेषकर आज के धार्मिक वैमनस्य के युग में उनके धार्मिक विचार हिंदू और मुसलमान दोनों के लिए मंगलकारी हो सकते हैं। डॉ. हरमहेंद्र सिंह बेदी के शब्दों में–

''कबीर के व्यक्तित्व के दो प्रधान पक्ष है– प्रथम धर्म सुधारक का, द्वितीय शुद्ध भक्ति का। इसी प्रकार

उनके काव्य के भी दो पक्ष हो गए है। यदि सुधारक उपदेशक के रूप में इन्होंने जो कुछ कहा है हव खंडन–मंडन की उस भावना से ओत–प्रोत होने के कारण नीरस, शुष्क एवं कर्कश भाषा है। इसमें साहित्यिक सौंदर्य का अभाव है। क्योंकि ऐसा करते समय सरस काव्य का सृजन करना कबीर का लक्ष्य नहीं था''

2. निर्गुण मत और कबीर

मध्यकालीन भारतीय संस्कृति में भक्ति की धारा प्रवाहित हुई। यह धारा निर्गुण और सगुण दो धाराओं में विभक्त हो गई। निर्गुण सम्प्रदाय का भक्ति के प्रति महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उस युग के संत कवियों ने अंधकार रूपी अज्ञान में फँसे हुए लोगों को सही मार्ग दिखाया नामदेव, कबीर, धर्मदास, रैदास, नानक, दादू, रज्जबदास, सुंदरदास, मलूकदास, दयाबाई, सहजोबाई आदि निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख संत कवि हैं। इन सभी कवियों ने निर्गुण–निराकार ईश्वर की भक्ति का प्रचार किया। कबीर साहब इन सभी कवियों में अग्रणी हैं। संत काव्यधारा में उनका स्थान सर्वाधिक प्रमुख है। कबीर के निर्गुण संबंधी विचारों को जानने के लिए सर्वप्रथम निर्गुण शब्द को समझना आवश्यक है।

1. निर्गुण शब्द की व्याख्या

निर्गुण शब्द का अर्थ है – गुणरहित अर्थात् उस ईश्वर की भक्ति करना जिसका न कोई गुण है, न रंग है, न रूप है। महाभारत और श्रीमद्भागवत गीता में गुणरहि को ही निर्गुण कहा गया है। आगे चलकर गद्गुरू शंकराचार्य ने ब्रह्म के लिए निर्गुण शब्द का प्रयोग किया जो कि जन्म–मरण रहित और गुणों से रहित है। नाथ सम्प्रदाय ने इस शब्द का प्रयोग हृदय में स्थित यौगिक ब्रह्म के लिए किया है। इससे स्पष्ट होता है कि संत कवियों से पूर्व निर्गुण शब्द का व्यापक प्रचार था। कबीर साहब ने इसी निर्गुण शब्द को अपना लिया और अपेन आराध्य ईश्वर को निर्गुण की संज्ञा दी। यह शब्द तत्कालीन इस्लाम के मत से बहुत कुछ मिलता–जुलता है। मुस्लिम धर्म भी अपने आराध्य को निर्गुण–निराकार कहता है और मुस्लिम धर्म की दृष्टि का समन्वय कबीर के निर्गुण में हो जाता है। संत कवियों ने दो रूपों में निर्गुण शब्द का प्रयोग किया है–

1. द्वैताद्वैत विलक्षण परम तत्व
2. हृदयस्थ यौगिक ब्रह्म का रूप

संत कवि यारी साहब ने एक स्थल पर लिखा भी है–

'सुगमन सेज परम तत रटिया किया निर्गुण निरंकार।

निर्गुण काव्यधारा के विकास के सिद्धों, जैनमुनियों, नाथों, वैष्णव भक्ति आंदोलन, महाराष्ट्र का संत सम्प्रदाय तथा इस्लाम धर्म आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। परन्तु कबीर साहब ने ही भक्तिकाल में निर्गुण काव्यधारा को बल प्रदान किया और व्यापक स्तर पर इसका प्रचार किया। इस संदर्भ में नामदेव का उल्लेख करना आवश्यक होगा जिन्होंने ब्रह्म के निर्गुण रूप की आराधना पर बल दिया था। इस मत को ज्ञानाश्रयी शाखा भी कहा जाता है।

2. निर्गुण मत और कबीर

एक जनश्रुति के अनुसार कबीर का जन्म एक विधवा ब्राह्माणी के गर्भ से हुआ था जो कि लोकलाज के मारे शिशु कबीर को काशी के लहरतारा नामक तालाब की सीढ़ियों पर छोड़कर चली गई। नीरू और नीमा दम्पति ने कबीर का पालन–पोषण किया। कबीर की वाणी के आधार पर ही इनकी जाति जुलाहा मानी गई है। कबीर ने स्वयं कहा है–

'तू ब्राह्मण, मैं कासी का जुलाहा चीन्हि न मोर गियाना।'

कबीर के गुरू का नाम रामानंद था, लेकिन कुछ विद्वान सूफी संत शेख तकी को इनका गुरू मानते थे। लोई और रामजन्या इनकी दो पत्नियाँ थी। उनकी एक पुत्री और दो पुत्र भी उत्पन्न हुए। एक पुत्र का नाम कमाल और पुत्री का नाम कमाली था। अनेक स्थलों पर कबीर साहब ने स्वीकार किया है कि वे शिक्षित नहीं थे। वे कहते भी हैं–

मसि कागद छुओ नहिं, कलम गहि गहि हाथ।

जहाँ तक कबीर के जन्म का प्रश्न है, यह आज भी विवादास्पद बना हुआ है। चरित्र बोध के आधार पर उनका जन्म संवत् 1455 माना जाना है। अन्तः साक्ष्य के आधार पर यह उचित ही प्रतीत होता है।

कबीर साहब मूलतः जुलाहे का काम करके अपनी आजीविका चलाते थे, लेकिन उन्होंने अपना अधिकांश समय देश–भ्रमण और साधु–संगति में व्यतीत किया उन्होंने जगन्नाथपुरी, बगदाद, गुजरात आदि की यात्राएँ की परन्तु इतना निश्चित है कि उनके सिद्धान्तों पर स्वामी रामानंद का काफी प्रभाव है। उन्होनें गुरू को सद्‌गुरू की संज्ञा दी और यह घोषण की कि गुरू की कृपा से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। कबीर साहब ने अनेक स्थलों पर गुरू की महिमा का गान किया है। एक स्थल पर वे कहते हैं–

सतगुरू लई कमाँण करि, बाँहण लागा तीर।

एक जू बाधां प्रीति सूँ, भीतरि रह्म सरीर।।

भले ही कबीर पर विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव पड़ा हो, परन्तु उन्होंने अनुभव और साधना के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि निर्गुण ब्रह्म ही इस सृष्टि का मूल कारण है। उनके ब्रह्म संबंधी विचारों पर उनकी आत्मानुभूति और आत्मचिंतन का प्रभाव देखा जा सकता है। भले ही निर्गुणवाद भारतीय दर्शन से मेल खाता हो परन्तु हिंदी साहित्य में निर्गुण शाखा के प्रवर्त्तक कबीर साहब ही हैं। उनका निर्गुण संबंधी चिंतन विशुद्ध निर्गुणवादी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उस पर जहाँ एक और वैष्णव भक्ति का प्रभाव है, वहाँ दूसरी और इस्लाम का भी प्रभाव है, लेकिन कबीर के निर्गुण संबंधी विचार काफी मौलिक प्रतीत होते हैं। एक स्थल पर वे कहते भी हैं –

परब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।

कहबे की शोभा नहीं, देख्या ही परमान।

अक्षय पुरूष एक पेड़ है, निरंजन बाकी डार।

त्रिदेव शाखा भये, पात भया संसार।।

कबीर के निर्गुण राम अविगत है भले ही उन्होंने राम शब्द का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। परन्तु राम से उनका अभिप्राय निर्गुण–निराकार ब्रह्म से है। वेद, पुराण, स्मृति, व्याकरण, शेष, गरूड़ और कमला भी उस निर्गुण राम को नहीं जानते।

कबीर का कहना है कि निर्गुण राम का जाप करने से ही साधक का कल्याण हो सकता है। वे कहते भी हैं–

निर्गुण राम जपहु, रे भाइ। अविगत की गति लखि न जाई।।

चारि वेद जाके सुमृत पुराना। नौ व्याकरणां मरम न जाना।।

सेसनाग जाके गरूड़ समाना। चरण–कँवला कँवल नहि जाना।।

कहैं कबीर जाकै भेदे नाहीं। निज जन बैठे हरि की छांही।।

3. आत्मानुभूति और निर्गुण ब्रह्म

कबीर साहब ने स्वयं ब्रह्म की साधना की और निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार किया, परन्तु इसका श्रेय वे अपने गुरू को देते हैं जिन्होंने कबीर साहब को ज्ञान का प्रकाश दिया। कबीर ने अनेक स्थलों पर दृढ़तापूर्वक कहा है कि उनका उद्देश्य निर्गुण ब्रह्म पर विचार करना है। उसकी साधना से ही साधक को मुक्ति मिल सकती है परन्तु निर्गुण पर विचार करना कोई सहज कार्य नहीं है। जिस पर गोविंद कृपा होता है, उसी का मन निर्गुण ब्रह्म की ओर अग्रसर होता है। जहाँ तक निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार का प्रश्न है उसके बारे में कुछ भी कहना कठिन है। वह तो गूंगे का गुड़ है अर्थात् निर्गुण ब्रह्म का अनुभव ऐसा अनुभव है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। एक स्थल पर वे निर्गुण विचार धारा को व्यक्त करते हुए कहते हैं–

> "जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
>
> फूटा कुंभ, जल जलहि समाना इहि तम क्यो ज्ञानी।"

डॉ0 सर्वनाम सिंह ने कबीर के निर्गुण के बारे में लिखा भी है – इसी अद्वैत तत्व को कबीर ने अनेक नामों से अभिहित किया है, पार ब्रह्म, ब्रह्म, परमात्मा, हरि, निरंजन, अलख, खालिक, निर्गुण, भगवान, राम, पुरूषोत्तम आदि अनेक नामों से वे उसी अद्वैत तत्व की ओर संकेत करते हैं। वह गुणविहीन है। उसका न कोई रूप है, न रंग है, उसमें न ही देखने की कोई चीज है। उसका कोई नाम भी नहीं रखा जा सकता है, क्योंकि वह निर्गुण और निराकार है।"

अनेक नामों का उल्लेख – इसमें कोई संदेह नहीं है कि निर्गुण ब्रह्म का निरूपण करते समय कबीर साहब ने अनेक नामों का उल्लेख किया है। इन नामों में राम और हरि शब्दों का प्रयोग को लेकर कुछ भ्रम हो सकता है परनतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि वे राम शब्द का प्रयोग करके विष्णु के अवतारवाद का समर्थन कर रहे हैं। उन्होंने तो केवल नाम–स्मरण के लिए ही इन नामों का सहारा लिया है। यह भी संभव है कि उन्होंने स्वामी रामानंद के प्रभाव से राम शब्द का प्रयोग किया हो। इस भ्रांति को दूर करने के लिए वे एक स्थल पर कहते भी हैं–

> दशरथ सुत तिहँ लोक बखाना।
>
> राम नाम का मरम है आना।।

भले ही तीनों लोगों में राम को दशरथ का पुत्र कहा गया हो लेकिन मेरे राम का मरम कुछ और है। मेरे राम निर्गुण–निराकार हैं। यही कारण है कि उन्होंने निरंजन और अलख नाम से ब्रह्म को बार–बार याद किया। कबीर साहब स्वीकार करते हैं कि ब्रह्म के स्वरूप को कोई पहचान नहीं सका और जो उसे पहचान लेता है वह निर्गुण ब्रह्म के समान हो जाता है। कबीर साहब यह भी कहते हैं कि प्रायः लोग ब्रह्म के ऊपरी रूप को देखते हैं। उसके असल तत्व को नहीं समझ पाते जिसके फलस्वरूप वे निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर पाते। एक स्थल पर वे लिखते हैं–

> "न जानै साहब कैसा है।
>
> मुल्ला होकर बाँग जो दैवे,
>
> क्या तेरा साहब बहरा है।
>
> कीड़ी के पग नेवर बाजे,
>
> सो भी साहब सुनता है।

माला फेरी तिलक लगाया
लम्बी जटा बढ़ाता है।
अंतर तेरे कुफर–कटारी,
यो नहीं साहब मिलता है।"

कबीर ने उस निर्गुण ब्रह्म को अनिर्वचनीय तत्व कहा है। वह केवल अनुभूतिजन्य है। वह कहने–सुनने की वस्तु नहीं है। उसका कोई आकार प्रकार भी नहीं है। कबीर का निर्गुण ब्रह्म दुनिया का परम तत्त्व है। वह स्वयं सारे संसार में व्याप्त है। उसके हाथ–पैर नहीं है। वह सत्, रज्, तम् आदि गुणों से भीपरे है। उसका जाप नहीं हो सकता। उसका आदि अंत कहीं नहीं है। कबीर साहब निर्गुण ब्रह्म को निर्गुन–निराकार कहते–2 यह भी कहने लगते हें कि वह न पृथ्वी है, न आकाश है, न अग्नि है और न पानी। न वह किसी नदी में है, न सागर की लहरों में। वह पाप–पुण्य से भिन्न है। वेद–पुराण से भिन्न है और शास्त्रों से परे है। वह असीम है परन्तु सर्वव्यापक है। कबीर की यह संपूर्ण व्याख्या आत्मानुभूति का परिणाम कहा जा सकता है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के निर्गुणवाद के बारे में कहा भी है– परन्तु यह राम या हरि कौन है? परब्रह्म, अपरब्रह्म, ईश्वर और कुछ? इसमें तो कोई संदेह नहीं कि हरि, गोविंद, राम, कृष्ण, केशव, माधव आदि पौराणिक नामों से कबीर साहब क्वचित्, कदाचित ही सगुण अवतार के रूप में व्यवहार करते हैं। एक दम नहीं करते, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पर जब वे अपने पर उपास्य को इन नामों से पुकारते हैं तो सगुण अवतारों से उनका मतलब नहीं होता।"

निर्गुण ब्रह्म की महिमा का गान

कबीर का निर्गुण ब्रह्म महिमाशाली है। उसकी शक्ति, प्रभाव तथा प्रकाश तक कोई भी नहीं पहुँच सकता। वह असीम है, लेकिन कबीर ने अपने निर्गुण ब्रह्म से मधुर संबंध की स्थापना की है। प्रेमी–प्रेमिका के रूपक द्वारा वे मधुर मिलन और विरह की बातें करने लगते हैं। कबीर ने अपने ब्रह्म से प्रियतम का संबंध स्थापित किया और उसके प्रति अपने प्रेम की व्यंजना की। एक स्थल पर कबर की आत्मानुभूति विरहिणी का रूप धारण कर लेती है। वे स्वयं को ब्रह्म की नारी मानने लगते हैं। वे कहते भी है–

"बालम आए हमारे गेह रे।
तुम बिन दुखिया देह रे।
सब कोई कहै तुम्हारी नारी, मोको यह संदेह रे।
एकमेक सेज न सौवे तब लगि कैसा स्नेह रे।
अन्न न भावै नींद न आवै, जिह बन धरै न धीरे रे।"

....
अब तो बेहाल कबीर भयौ है देखे जिब जाय रे।।

यहाँ कबीर साहब की आत्मनुभूति चरम सीमा को पहुँच गई है। कबीर विरहिणी के रूप में अपने प्रियतम (निर्गुण ब्रह्म) का आत्मसाक्षात्कार करने के लिए अत्यधिक व्याकुल है, लेकिन कबीर यह बात बार–2 कहते हैं कि ब्रह्य आडम्बरों से ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। पत्थर पूजने से यदि ब्रह्म मिल जाता तो कबीर भी ऐसा ही करते, लेकिन यह तो मात्र भ्रम फैलाना है। वह निर्गुण ब्रह्म बहरा नहीं है जो मुल्ला की जोर की आवाज ही सुन सकता है। कबीर साहब स्वीकार करते है कि निर्गुण, ब्रह्म को पाना कोई आसान काम नहीं है। वे कहते हैं–

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।

सीस उतारे भुई धरै, तब बैठे धर माहिं।।

कबीर के अनुसार साधना का क्षेत्र ही प्रेम का क्षेत्र है। प्रेम ही ईश्वर है। यह कोई मौसी का घर नहीं है। अतः इस प्रेम को प्राप्त करना आसान नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति निर्गुण ब्रह्म के प्रेम को प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिए पहले अपने सिर को उतारना पड़ता है अर्थात् अपने अहं को मारना पड़ता है। "शाीश उतारने" का अर्थ है– अहम् का विनाश। तभी साधक निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है, अहं और परम ब्रह्म एक साथ नहीं रह सकते।

3. निर्गुण काव्य परम्परा और कबीर

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में निर्गुण काव्यधारा और सगुण काव्यधारा नाम की दो धाराएँ प्रवाहित हुई। निर्गुण काव्य परम्परा में संत काव्यधारा और सूफी काव्यधारा को समाहित किया जा सकता है। परन्तु सूफी काव्यधारा एक प्रेमाख्यानक काव्यधारा है, जो अनेक दृष्टियों से संतकाव्यधारा से अलग है। संत काव्यधारा को निर्गुण ज्ञानश्रयी शाखा भी कहा गया है। यह काव्यधारा बौद्धों तथा नाथों से अत्यधिक प्रभावित हुई। वस्तुतः निर्गुण संत काव्यधारा नाथ सम्प्रदाय के प्रेरणा मूलक तत्वों को लेकर विकसित हुई। अधिकांश विद्वान तथा आलोचक कबीर साहब को ही निर्गुणकाव्यधारा का प्रवर्त्तक मानते हैं परन्तु हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि कबी से पूर्व महाराष्ट्र का विटठल सम्प्रदाय विद्यमान है। जिसमें संत संप्रदाय के सभी तत्व देखे जा सकते हैं। कबीर से पूर्व महाराष्ट्र में निर्गुण निराकार की साधना करने वाले संतों में महाराज सोमेश्वर चक्रधर महाराज नामदेव ज्ञानेश्वर तथा मुक्ताबाई आदि के नाम प्रमुख हैं। फिर भी इस बात को स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए कि कबीर ने निर्गुण संत मत की सहज धारा हिंदी साहित्य में प्रवाहित की। जहाँ तक महाराष्ट्र के विट्ठल सम्प्रदाय का प्रश्न है, इस सम्प्रदाय ने केवल शुष्क निर्गुण भाव की धारणा पर ही बल दिया था। लेकिन नामदेव निश्चय से कबीर साहब से पूर्व काल के निर्गुण संत कवि हैं जिन्होंने हिंदी भाषा में काव्य रचना की। उनकी कुछ रचनाएं तो गुरू ग्रंथ साहब में सम्मिलित की गई है। अतः नामदेव को ही भक्तिकालीन निर्गुण काव्यधारा का प्रवर्त्तक माना जाना चाहिए, न कि कबीदरदास को। एक अन्य उल्लेखनीय बात यह है कि निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा का संबंध्ण रामानंद से है। उनका समय बारहवीं शताब्दी का पूर्वाद्ध है। इसके 12 शिष्यों में कबीर, रैदास, पीपा, धन्ना, सेन, सदना, भक्त आदि प्रमुख कवि हैं। इन सबमें कबीर साहब ही सर्वश्रेष्ठ कवि कह जा सकते हैं। निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवियों का परिचय इस प्रकार है–

नामदेव

ये संत ज्ञानेश्वर के समकालीन माने जाते हैं। उन्होंने महाराष्ट्र तथा उत्तर भारत में अपने मत का प्रचार किया। यहाँ तक कि कबीर, रैदास तथा मीरा ने भी आदर के साथ उनका स्मरण किया है। विट्ठल सम्प्रदाय में दीक्षा लेने के बाद उन्होंने निर्गुण–निराकार ब्रह्म की साधना करनी आरम्भ कर दी। बाद में महाराष्ट्र को त्यागकर हरिद्वारा होते हुए वे पंजाब के घुमर गाँव में जाकर बस गए। नामदेव के अनेक गुरू ग्रंथ साहिब में संकलित हैं।

क्बीर साहब

कबीर साहब का जीव–वृत्त अंधकार के गर्भ में छिपा हुआ है। एक जनश्रुति के अनुसार उनका जन्म विधवा ब्राह्मणी से हुआ जो लोकलाज के डर से शिशु कबीर को बनारस के लहरतारा सरोवर की सीढ़ियों पर छोड़कर चली गई। नीरू और नीमा जुलाहा दम्पत्ति ने शिशु कबीर को पाल–पोस कर बड़ा किया। स्वामी रामानंद उनके गुरू थे। कबीर की एकमात्र प्रमाणित रचना 'बीजक' है। जिसमें उनके शिष्यों द्वारा उनके उपदेश संकलित किए गए हैं। इसके 3 भाग हैं – साखी, सबदी तथा रमैणी। कबीर साहब ने निर्गुण निराकार ब्रह्म की भक्ति पर बल दिया। उनका कथन है कि वह निराकार ईश्वर प्रत्येक हृदय में निवास करता है। उसे कहीं बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है। कबीर के काव्य में संत काव्यधारा की सभी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। वस्तुतः कबीर साहब ही निर्गुण काव्यधारा के सर्वाधिक प्रमुख कवि कहे जा सकते हैं।

रैदास

रैदास संत काव्यधारा के अन्य प्रमुख कवि माने जाते हैं। ये भी रामानंद के शिष्य थे और जाति से चमार थे। ये कबीर साहब के समकालीन कहे जाते हैं। गुरू ग्रंथ साहिब में लगभग 100 पद संग्रहित है। यद्यपि रैदास ने मुख्यतः निर्गुण उपासना पर बल दिया है, परन्तु उन्होंने सगुण उपासना का कोई विशेष विरोध नहीं किया।

गुरू नानक देव

'गुरूनानक' निर्गुण संत काव्य परम्परा के प्रमुख कवि हैं। वे सिक्ख धर्म के आदि गुरू हैं। इनका जन्म पाकिस्तार के लाहौर से तीस मील दूर तलवंडी गाँव में सन् 1469ई0 को हुआ। गुरु ग्रंथ साहिब में इनके पद 'महला–1' के नाम से संकलित हैं। जपुजी, आसदीवार, रहिरास, सोहिला आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनके काव्य में भी निर्गुण काव्यधारा की लगभग सभी विशेषताएँ हैं।

धर्मदास

'धर्मदास' कबीर के प्रमुख शिष्य माने जाते हैं। इनका पूरा नाम धनी धर्मदास था। इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की और कबीर के उपेदशों को संवाद शैली में लिखा। इनका मुख्य ग्रंथ 'सुखनिधान' है। इनका काव्य संग्रह 'धनी धर्मदास' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

दादूदयाल

इनका नाम निर्गुण संत परम्परा में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। इनका जन्म 1544 ई0 में अहमदाबाद में हुआ। इन्होंने देश में भ्रमण करने के बाद राजस्थान में नरैना नामक स्थान पर गद्दी स्थापित की। इनकी शिष्य परम्परा में रज्जबदास, गरीबदास, सुंदरदास, बखना, जनगोपाल आदि के नाम निगवाए जा सकते हैं, 'अनभैवाणी' इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। इनके काव्य में संत काव्य की सभी विशेषताएँ देखी जा सकती हैं।

रज्जबदास

'रज्जबदास' दादूदयाल के प्रधान शिष्यों में से एक माने जाते है। ये जाति से पठान थे। 'बानी और सब्बंगी' इनके दो प्रमुख ग्रंथ हैं। इनके काव्य में भकित तथा प्रेम से युक्त उच्च कोटि के पद मिलते हैं। इनका काव्य विरहानुभूति के लिए संत कवियों में प्रसिद्ध है। साखी और पदों के अतिरिक्त इन्होंने कवित्त, सवेया आदि छंदों में भी काव्य रचना की है। इनकी भाषा सरल, सहज तथा सुबोध है।

मुलकदास

इनका जन्म इलाहाबाद के पास कड़ा नामक गाँव में हुआ था। इन्होंने जयपुर, मुल्तान, पटना, नेपाल, काबुल आदि में अपनी गाछियाँ स्थापित की। वे सगुण उपासना को त्यागकर निर्गुण उपासना करने लगे। ज्ञानबोध, रतनखान, भक्त बच्दावली, भक्ति विवेक, बारहखड़ी, रामावतार लीला, ब्रजलीला, ध्रुवचरित, विभय विभूति, सुख सागर, विविध पद आदि इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इनके काव्य में भी संत काव्यधारा की सभी विशेषताएँ देखी जा सकती हैं।

सुंदरदास

'सुंदरदास' भी अन्य निर्गुण संत कवि माने जाते हैं। ये शिक्षित कवि थे और इन्होंने शास्त्री पद्यति पर काव्य रचना की। इसी प्रकार बिश्नोई सम्प्रदाय के संस्थापक जंभनाथ, निरंजनी संप्रदाय के संस्थापक हरिदास निरंजनी भी निर्गुण काव्यधारा के कवि थें। अन्य कवियों में तुलसीदास संतयारी, संत धरणीदास, दयाबाई, सहजोबाई आदि के नाम से गिनवाए जा सकते है। पहले ही स्पष्ट किया जा चुका हे कि निर्गुण काव्यधारा में कबीर ही सर्वाधिक प्रमुख कवि हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो स्वीकार किया है कबीर साहब दादू आदि के परवर्ती संतों की प्रवृति घर

जोड़ने की माया है। उनके काव्यों में संतों की मौलिकता, विशेषता और सहजपन दिखाई नहीं देता। फिर भी निर्गुण कवियों का साहित्य युगानुरूप है कारण यह है कि हिंदू धर्म असंख्य गली–सड़ी रूढ़ियों का शिकार बन चुका था। ब्राह्मण लोग जनता को ठगने तथा मूर्ख बनाने में लगे हुए थे। कबीर आदि संत कवियों ने लोक कल्याण भावना से प्रेरित होकर काव्य की रचना की।

निर्गुण काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं –

कबीर वाणी में निर्गुण ब्रह्म – कबीर आदि सभी संत कवि निर्गुण–निराकार ब्रह्म की भक्ति मे ंविश्वास करते थे। उस काल में एक ओर तो मूर्ति पूजक हिंदू समाज था तथा दूसरी ओर मूर्ति भंजक मुसलमान समाज था। हिंदू समाज में अनेक विषमताएँ थी। ऊँच–नीच के भेद–भाव के कारण यह समाज चार जातियों में बँटा हुआ था। संत कवियों ने घोषणा की कि निर्गुण भक्ति सभी जातियों और वर्णों के लिए उपलब्ध है। इन कवियों ने ईश्वर के सगुण रूप का विरोध किया और निर्गुण ब्रह्म का समर्थन किया।

ऐतिहासिक दृष्टि से निर्गुण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग श्रीमदभागवद् गीता में मिलता है। महाभारत में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है। इन दोनों ग्रंथों में निर्गुण का अर्थ है– गुण रहित। शंकराचार्य ने निर्गुण शब्द का प्रयोग उस ब्रह्म के लिए किया है जो हृदय स्थित यौगिक ब्रह्म से भी विलक्षण है। रामानुज सम्प्रदाय में निर्गुण ब्रह्म का अर्थ है जो जरा, मृत्यु आदि त्याज्य गुणों से भी रहित है। नाथ सम्प्रदाय में निर्गुण शब्द का प्रयोग हृदय में स्थित यौगिक ब्रह्म के लिए किया गया है।

निर्गुण च शिवं शान्तं, गगने शिवते मुख्म्।

भ्रुमध्ये दृष्टिनायाय, ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत्।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय दर्शनशास्त्र में निर्गुण शब्द का प्रयोग शब्द का प्रयोग व्यापक रूप में हुआ है। आगे चलकर भक्तिकालीन संत कवियों ने ब्रह्म के लिए निर्गुण शब्द का प्रयोग किया। परंतु उन्होंने निर्गुण शब्द का प्रयोग दो रूपों में यह प्रयोग किया है–

1. द्वैताद्वैत विलक्षण परमतत्व

हृदयस्त यौगिक ब्रह्म

भक्तिकाल में निर्गुण काव्यधारा का आरंभ तत्कालीन अंधविश्वासों तथा धार्मिक कर्मकाण्डों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। इन कवियों का लक्ष्य पंथ या सम्प्रदाय की स्थावना करना नहीं था, परन्तु आगे चलकर शिष्यों ने गुरुओं की स्मृति को सजीव और ताजा बनाए रखने के लिए सम्प्रदायों का निर्माण कर लिया। इस प्रकार निर्गुण सम्प्रदाय में कबीर का सर्वोच्य स्थान है। कबीर के गुरु रामानंद थे, परंतु कुछ विद्वान शेख तकी को कबीर का गुरू मानते हैं लेकिन यह सही प्रतीत नहीं होता। संभव है कबीर साहब शेख तकी के संपर्क में आए हो और उनसे प्रभावित हुए हो। एक स्थल पर कबीर शेख तकी को फटकारते हुए कहते हैं–

घट–घट है अविनासी सुनहुं, तकी तुम शेख

इस पंक्ति से यह स्पष्ट होता है कि यदि शेख तकी कबीर के गुरू थे तो वे उसे कैसे फटकार सकते हैं?

कबीर के निर्गुण संबंधी विचार काफी मौलिक लगते हैं। भले ही उन पर विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव पड़ा हो, लेकिन कबीर ने अने स्थलों पर अपने मौलिक विचार व्यक्त करने का प्रयास किया है–

पार ब्रह्म के तेज का कैसा है उनमाना

कहबे की शोभा नहीं, देख्या, परमान

अक्षय पुरूष एक पेड़ है, निरंजन वाकी डार।

त्रिदेव शाखा भये, पात भया संसार।।

कबीर साहब अपने परब्रह्म को अगम्य और अगोचर मानते हैं। उसकी ज्योति सर्वत्र जगमगा रही है। वे जिस ब्रह्म की बंदगी करते हैं वह पाप, पुण्य, छुआछुत, भेदभाव आदि सबकी प्रवृति से परे हैं। इसलिए सभी उसका भजन करते हैं। उनका विचार है कि निर्गुण भक्ति का मार्ग सबके लिए खुला है। जब साधन सांसारिक बंधनों को त्यागकर उस असीम ब्रह्म की ओर अग्रसर होता है।

वह भी उसी में निवास करने लगता है। ऐसी दशा को पाकर साधक मोक्ष पर लेता है। वहाँ प्रभु चरणों में निवास करता हुँ आसाधक देखता है कि फूल बिना मृणाल खिला हुआ है। इसे कोई विरला ही देख सकता है। कबीर का मन रूपी भ्रमर सहस्रार चक्र के प्रति अनुरक्त हो गया है। हमेशा वहीं पर निवास करने लगा है। वह सहस्रार कमल बिना जल के खिला रहता है। परन्तु परमात्मा के स्वरूप को कोई विरला ही देख सकता है। कबीर साहब जी स्वीकार करते हैं कि गुरू ही ब्रह्म से साधक का परिचय कराता है। वे कहते भी हैं –

अबंगिम अगोचर गमि नहीं, तहाँ जगमगै जोति।

जहाँ कबीरा बँदगी, तहां पाप पुण्य नहीं छोति।

घट महि औघट लह्य, औघट माँहि घाट।

कहि कबीर परया भया, गुरू दिखाई बाट।।

क्बीर साहब अपने परब्रह्म को अगम्य और अगोचर मानते हैं। इन्होंने निर्गुण ब्रह्म को अनेक नाम दिए हैं। वे उसे परब्रह्म, परमात्मा, हरि, निरंजन, अलख, निर्गुण, भगवान, केशव, राम, पुरूषोत्तम तत्, परमतत् आदि नामों की चर्चा करते हैं। उस ईश्वर का कोई रूप नहीं, रंग नहीं, आकार नहीं। वह अजन्मा है। इसलिए वह निर्गुण और निराकार कहा गया है। उसी संबंद्ध में डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते भी हैं–

"परन्तु यह राम या हरि कौन है? परब्रह्म, अपरब्रह्म, ईश्वर और कुछ? इसमें तो कोई संदेह नहीं कि हरि, गोविंद, राम, केशव, माधव आदि पौराणिक नामों को कबीर साहब क्वचित् कदाचित् ही सगुण अवतार के अर्थ में व्यवहार करते हैं। एक दम नहीं करते, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पर जब वे अपने पर उपास्य को इन नामों से पुकारते है तो सगुण अवतारों से उनका मतलब नहीं होता।"

एक स्थल पर कबीर उसे निरंजन शब्द से संबोधित करते हैं। उपनिषदों में इस शब्द का प्रयोग मायारहित के लिए हुआ है। डॉ0 गोविंद त्रिगुणायत का कहना है कि कबीर ने वैदिक और वैष्णव साहित्य में प्रयुक्त निरंजन के अर्थ में ही इस शब्द का प्रयोग किया है। वे लिखते हैं– कबीर ने निरंजन शब्द का प्रयोग उस अर्थ में कभी नहीं किया था जिस अर्थ में वह कबीर पंथियों में मान्य है। उन्हें हम कबीर की प्रामाणिक रचनाएँ नहीं मानते। कबीर ग्रंथावली और संत कबीर में ढूढ़ने पर भी ऐसा स्थल नहीं जहाँ उन्होंने निरंजन शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में किया हो जिसमें वह कबीर पंथ में प्रचलित हैं। कबीर साहब लिखते भी हैं–

अंजन माहि निरंजन भेट्या तिल महि मेट्या तेलां

मूरति माहि अमूरति परस्या, भया निरूतरि खेलां।

परन्तु इतना निश्चित है कि निर्गुणवादियों में कबीर ने जिस निर्गुण मत की व्याख्या की है, वे अपने आप में मौलिक हैं। उनका निर्गुण ब्रह्म और सगुण से भी परे हैं। वह अनिर्वचनीय है, जिसे लोग अजर–अमर भी कहते हैं, लेकिन कबीर जी स्वयं स्वीकार करते हैं कि उसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि उसका आदि–अंत

कुछ नहीं है। यह भी नहीं कह सकते हैं कि वह पिण्ड या ब्राह्मण की दृष्टि में है। सुविधा की दृष्टि से उन्होंने कुछ नामों का प्रयोग किया है। इन नामों का प्रयोग हिंदू, जैन, नाथपंथी आदि करते आ रहे थे। निम्नलिखित दोहों में कबीर के निर्गुण संबंधी मौलिक विचार देखे जा सकते हैं –

"लोका जानि न भूलौ भाई।

खालिक, खलक, खलक में खालिक सब घर रह्यो समाई।"

"दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना।

राम नाम का मरम है आना।"

4. मध्यकालीन धर्म–साधना और कबीर

कबीर के अभ्युदय के पूर्व उत्तर भारत में अनेक धार्मिक साधनाएँ थीं। सबसे अधिक प्रभाव नाथपंथी योगियों का था। दक्षिण से उमडकर ही भक्ति–प्रवाह उत्तर भारत में प्रवाहित हो चुका था। कट्टर एकेश्वरवादी निम्नवर्गीय जनता को राजनीतिक और सामाजिक कारणों से प्रभावित कर था। सूफी साधक अपनी उदारता और सात्विकता के कारण भारतीय जन–मान के निकट आ गये थे। शैव और शाक्त मतों का प्रचार भी था किन्तु उनकी गति मयता समाप्त हो चुकी थी। विशेषतः शाक्त (शक्ति के उपासक) साधना तांत्रिक पद्धति को स्वीकार कर गुह्य और एकांगी हो गई थी। इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के तपस्वी और साधक अपने–अपने रंग में मस्त विविध प्रकार की साधन नाओं में लीन थे। कबीर विलक्षण प्रतिमा लेकर उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी धार्मिक साधनाओं के व्यवहार पक्ष में आ जाने वाली दुर्बलताओं को लक्षित किया और अपने निजी अनुभव को प्रमाण मानकर धर्मसाधना के क्षेत्र में क्रान्ति उपस्थित की। उन्होंने सबसे अधिक महत्व नाथपंथी योगियों और वैष्णव भक्तों को दिया, किन्तु इन्हें भी वे पुर्णतः स्वीकार न कर सके और परमतत्व के स्वरूप, उसकी प्राप्ति के साधन, मानव जीवन की सार्थकता एवं उसके लक्ष्य के सम्बन्ध में स्वतंत्र मान्यताएं स्थिर की। मध्यकालीन धर्म–साधनाओं से कबीर का सम्बन्ध और उनके बीच उनका महत्व प्रतिपादित करने के लिए आवश्यक है कि हम अलग–अलग प्रत्येक धर्म–साधना के संदर्भ में कबीर के विचारों एवं सिद्धान्तों की मीमांसा करें।

वैष्णव भक्ति और कबीर :

कबीर ने अपनी साखियों में सर्वाधिक महत्व वैष्णवों को दिया है। यही नहीं, जिन रामानंद को उन्होंने गुरु–रूप में स्वीकार किया था वे वैष्णव ही थे । इस संदेह नहीं कि कबीर पर वैष्णव भक्ति के गहरे संस्कार थे। वैष्णव भक्ति । परपरा अत्यंत प्राचीन है। विष्ण एक वैदिक देवता हैं। वेदों में इनका स्कार विशेष महत्वपूर्ण नहीं माना गया है। सर्वप्रथम ऐतरेय ब्राहाण में कि सम्मानित पद दिया गया है। शतपथ ब्राहाण में विष्णु का महत्व और बढ़ गया है। महाभारत में विष्णु को छः अवतारों–वराह, नृसिंह, वामन, भार्गवराम (परशुराम), दाशरथि राम, वासुदेव कृष्ण–में से एक माना गया है। महाभारत से ही यह सूचना मिलती है कि 'एकांतिक', 'नारायणीय', 'पांचरात्रिक', 'सात्वत' और 'भागवत' ये सभी धर्म वैष्णव परंपरा के अन्तर्गत हैं। महाभारत में इन सभी को एक–दूसरे का पर्याय मान लिया गया है। ऐसा समझा जाता है कि महाभारत काल में भागवतधर्म लोक–प्रचलित हो चुका था। इसके प्रवर्तक स्वयं सात्वत या वृष्णिवंशीय कृष्ण थे। इस धर्म की प्रभाव–वृद्धि के कारण अनेक पूर्ववर्ती धर्मएकांतिक, नारायणीय आदि–भी इसमें समाहित हो गये और साथ ही नारायण, वासुदेव, विष्णु और कृष्ण का भी समीकरण हो गया अपने मूल रूप में यह धर्म वैदिक ब्राह्मण धर्म के प्रभाव में विकसित होने पर भी उससे पर्याप्त उदार और प्रगतिशील था। वैदिक कर्मकाण्ड का विरोध तो उपनिषदों में ही होने लगा था। कालान्तर में उपनिषदों का तत्त्व–चिंतन भी मानव की राग–भावना को तुष्ट करने में असमर्थ हुआ और भक्ति–प्रधान धर्म की आवश्यकता का अनुभव किया गया। भागवत या वैष्णव धर्म इसकी पूर्ति में सहायक हुआ। ईश्वर प्राप्ति के लिए मात्र 'प्रेम' को ही केन्द्रीय तत्त्व मानने के कारण इस धर्म का लोकव्यापी प्रचार हुआ और आर्येतर जातियों को भी इसमें स्थान प्राप्त हुआ। परंपरावादी ब्राह्मणधर्मानुयायी इसे समय–समय पर वेद–बाह्य घोषित करते रहे। उत्तर भारत का शूरसेन मण्डल (मथुरा और उसके आस–पास का प्रदेश) भागवत या वैष्णव धर्मानुयायी सात्वत क्षत्रियों का गढ़ था। जरासंध के आक्रमणों से पीड़ित होकर सात्वत

क्षत्रिय भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर बस गये थे। यहीं से ये विदर्भ, आंध्र तथा द्रविड़ प्रदेशों में गये। इस प्रकार वैष्णव धर्म द्रविड़ देश में पहुँचा) नवीं शती में शंकराचार्य ने एक बार फिर इसे वेद–बाह्य घोषित किया। ग्यारहवीं शती में रामानुजाचार्य ने वैष्णव भक्ति को वेद–सम्मत प्रमाणित किया। उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति के अन्तर्गत रामोपासना का प्रचार करने वाले कबीर के गुरु स्वामी रामानंद इन्हीं रामानुजाचार्य की शिष्य–परंपरा में आते हैं। रामानुजाचार्य तमिल प्रदेश के आलवार भक्तों से विशेष प्रभावित थे। आलवारों की संख्या बारह मानी जाती है। इनमें नम्म आलवार (शठकोप) रामभक्त थे। इनके पूर्व के आलवार नारायण और विष्णु के उपासक थे। रामावत् संप्रदाय में इन्हें राम की पादुका का अवतार माना जाता है। रामानुजाचार्य लक्ष्मण के अवतार समझे जाते हैं। रामानुज की परंपरा में राघवानन्द तेरहवीं और रामानन्द चौदहवीं पीढ़ी में आते हैं। राघवानन्द की विचारधारा पर नाथपंथी योग–साधना का प्रभाव लक्षित किया गया है। वास्तविकता यह है कि परवर्ती वैष्णव धर्म की सभी शाखाओं पर नाथपंथ का प्रभाव है। स्वयं कबीर साहब का मत 'योगी भक्ति का बीज पड़ने से पल्लवित हुआ था द्य रामानन्द निस्संदेह एक यक महापुरुष थे। उन्होंने युग के समस्त विरोधों से ऊपर उठकर राम प्रचार किया। उसके अनुसार भगवान राम में नित्य निरन्तर स्मरण अनुराग ही भक्ति है। मुक्ति उत्पन्न होने के लिए–१. विवेक (दष्टा सात्त्विक आहार का विवेचन), २. विमोक (काम में अनासक्ति). ३ (भगवान राम का सतत शीलन), ४. क्रिया (पंच महायज्ञों का अनुष्ठान कल्याण (सत्य, आर्जव, दान, दया आदि), ६. अनवसाद (उत्साह) तथा ७ वर्ष (सांसारिक हर्षों से अनासक्तता) आवश्यक है।'' कहना न होगा कि कर ने रामानन्द से रामनाम का बीज–मंत्र ही ग्रहण किया था। सांप्रदायिक विधि शिष्यता ग्रहण नहीं की थी। यह उनके वश की बात नहीं थी। किसी प्रकार का सांप्रदायिक विधि–विधान एवं कर्मकाण्ड उन्हें मान्य नहीं हो सकता था। उन्होंने रामानन्दीय वैष्णव परंपरा से राम के प्रति अविचल प्रेम, नाम माहात्म्य, शरणागति की भावना, तथा जीवन के प्रति अहिंसात्मक दृष्टिकोण के तत्व ही ग्रहण किये थे । वैष्णव भक्ति में भी जहाँ उन्हें आडम्बर एवं बाह्याचार की गंध मिली वहाँ उन्होंने खुलकर उसका विरोध किया और फटकार कर अलग हो गये। यदि उन्होंने एक ओर राम और वैष्णव–इन दोनो को अपना साथी घोषित किया–

> कबीर मेरे संगी दोइ जरण, एक वैश्नौ, (बस्नौं) एक राम
>
> , वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाम।।

तो दूसरी ओर यह भी कहा–

> (कबीर) वैश्नौ (बैस्नौ) भया तो का भया बूझ्या नहीं वमेक ।
>
> छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक।।

स्पष्ट है कि कबीर को वही वैष्णव प्रिय था जो विवेकयुक्त हो और जिसकी रामनाम में अविचल निष्ठा हो । छापा तिलक बनाकर संसार को ठगनेवाले वैष्णवों से वे दूर ही रहते थे।

2. मुसलमानी एकेश्वरवाद और कबीर :

कबीर के समय में मुसलमानी एकेश्वरवाद का राजनीतिक–सामाजिक कारणा से निम्नवर्गीय हिन्दू जनता पर प्रभाव पड़ने लगा था। मुसलमानों में अभा जातिगत भेद–भाव कम था। उनमें भ्रातृभाव का प्राधान्य था। मुसलमानी मजहब स्वीकार कर लेने से निम्नवर्गीय जनता का सामाजिक महत्त्व बढ़ जाता था। अंग्रेज इतिहासकारों की सामान्य धारणा यह रही है कि (कबीर ने जो एक ईश्वर की भावना पर बल दिया है, वह मुसलमानी एकेश्वरवाद के प्रभाव का परिणाम) है। किन्तु यह धारणा निर्मूल है। मुसलमानों के 'एकेश्वरवाद' से कबीर ने अपना मतभेद स्पष्ट शब्दों में प्रकट करते हुए कहा है

'मुसलमान का एक खुदाई। कबीर को स्वामी घटि घटि रह्यो समाई' अर्थात् मुसलमान तो एक खुदा को

मानते हैं, लेकिन मेरा स्वामी तो घट–घट में व्याप्त है। वस्तुतः मुसलमानों का खुदा सभी देवताओं से बड़ा एक देवता है। उसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा गया है ''ला इलाहे इल्लिल्लाह मुहम्मदरसूल्लिल्लाह' अर्थात् अल्लाह का कोई अल्लाह नहीं है वह एक मात्र परमेश्वर है और मुहम्मद उसका रसूल है। कुरान–निरूपित यह अल्लाह सब कुछ कर सकता है। वह पृथ्वी के शाहंशाह की तरह उन शूरवीरों के लिए सुख सदन बनाता है, हूरों का प्रबन्ध करता है, और भोग–विलास की सामग्रियाँ प्रस्तुत करता है जो उसके लिए मरते–मारते हैं तथा उसी की उपासना में लगे रहते हैं। दूसरी ओर जो उसकी उपासना नहीं करते उन्हें दोजख की तरफ हाँक दिया जाता है और अनेक प्रकार से पीड़ित किया जाता है। ऐसे खुदा की मजलिस तक कबीर नहीं पहुँच सकते थे। उन्होंने साफ कहा है कि ''भला मैं उसके महल तक कैसे पहुँच सकता हूँ जिसके सत्तर हजार सालार हैं, अस्सी लाख पैगम्बर हैं, अठासी हजार शेख हैं, छप्पन करोड़ खास लोग हैं, तैंतीस करोड़ खिलवत खाने हैं और चौरासी लाख दीवान हैं। वहाँ मुझ गरीब की बात कौन सुनेगा।'' (कबीर तो उस राम के उपासक थे जो दीनबंधु है, जो सबमें रमा हुआ है। वस्तुतः मुसलमानों का ईश्वर इस अर्थ में एक है कि उसके समान शक्ति–सम्पन्न दूसरा कोई देवता नहीं है। कबीर का स्वामी इस अर्थ में एक है कि उसके अतिरिक्त और कोई सत्ता है ही। नहीं। कबीर न उस ईश्वर के उपासक हैं जिसकी मंदिरों में पूजा की जाती है। और न उस खुदा की इबादत करते हैं, जिसके लिए मस्जिदों में नमाज पढ़ी जाती है। वे कहते हैं

'एक निरंजन अलह मेरा।
हीन्दू तुरक दहूँ नहीं नेरा।
पूजा करौं न निमाज गुजारौं
एक निराकार हिरदै नमसकारौं

2. सूफी साधना और कबीर :

कबीर के आविर्भाव से बहुत पहले ही उत्तर भारत में सूफी साधकों की प्रभाव–विस्तार हो चुका था। सूफी साधकों की प्रेम की पीर हिन्द जनता आकृष्ट करने लगी थी। सामान्यतः ऐसा समझा जाता है कि कबीर साहब से प्रभावित थे। इसमें संदेह नहीं कि कबीर ने आध्यात्मिक विरह की सर को जिस प्रगाढ़ भाव से व्यक्त किया है, वह उन्हें सूफी साधकों के निकट ले जा है। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो सिद्धान्त, साधना और अनुभति की स्तरों पर कबीर साहब सूफियों से अलग प्रतीत होंगे। (सूफी साधकों का अतवार (तौहीद) वेदान्त के अद्वैतवाद से थोड़ा भिन्न है। 'सूफी मत के अनुसार ईश्वर (लाहूत) मनुष्यत्व (नासूत) में उसी प्रकार मिल जाता है, जिस प्रकार शराब में पानी। ईश्वरत्व का मनुष्यत्व में इस प्रकार हल हो जाना हुलूल कहलाता है। (यह स्थिति हाल की अवस्था (भावावेग की अवस्था–विशेष) में ही संभव है। वेदान्त के अनुसार परमतत्त्व की अद्वैतता का अर्थ दो तत्त्वों का मिलन नहीं है वरन् एक ही तत्त्व की स्थिति का बोध है। (अद्वैत वेदान्त के अनुसार 'ब्रह्म' ही एकमात्र तत्त्व है और 'जीव' भी वही है। इसके अतिरिक्त सूफी तत्त्व–दर्शन के अनुसार परमतत्त्व ज्ञान स्वरूप, नित्य प्रकाश, परम सौंदर्यमय और विश्वेच्छा स्वरूप है। विश्वदर्पण में अपने को बिम्बित करना उसका सहज स्वभाव है। यह नाम–रूपात्मक जगत् उसकी बाह्य अभिव्यक्ति है। (केबीरदास परमतत्त्व को ज्ञान स्वरूप एवं नित्य प्रकाश रूप तो मानते हैं किन्तु उसके सौंदर्य को जगत् के बाह्य प्रसार में उसी रूप में नहीं देखते जिस रूप में सूफी साधक देखते हैं। सूफियों के अनुसार भौतिक सौंदर्य परमतत्त्व के सौंदर्य का प्रतिबिम्ब होने के कारण सत्य है, किन्तु कबीर के अनुसार यह सारा रूपात्मक जगत् नश्वर और क्षणभंगुर है। कबीर का अनुभूतिपक्ष भी सूफियों से भिन्न है। कबीर के प्रेम के आदर्श सती और शूर हैं। उनका प्रेम शाश्वत और एकरस है। उनका राम से मिलकर 'एकमेक' होना क्षणिक भावावेग का परिणाम नहीं है। कबीर और राम का मिलन एक ही चेतन तत्त्व के द्विधा विभक्त (अज्ञान के कारण) तत्त्वों का पुनः मिलकर (भ्रम मिट

जाने के बाद) एक हो जाना है। इसी प्रकार साधना के स्तर पर भी कबीर किन्हीं योग या प्रेम–साधना की रूढ़ियों के कायल नहीं है। वे सहज सात्त्विक जीवन को सबसे बड़ी साधना मानते हैं। सूफी साधक योग और प्रेम–साधना की अनेक रूढ़ियों को महत्त्व देते हुए दिखाई देते हैं, कबीर साहब सभी क्षेत्रों में रूढ़ियों के विरोधी हैं। इसलिए व्यापक आधार पर देखा जाय तो कबीर और सूफीमत का अन्तर साफ लक्षित होता है।

काश्मीरी शैव सिद्धान्त और कबीर :

कबीर ने स्पष्ट शब्दों में कहीं भी शैव मत का उल्लेख नहीं किया है। एक पद में उन्होंने यह अवश्य कहा है कि इस संसार में सभी भ्रम में पड़कर मदमत्त हो गये हैं केवल 'शुक', 'उधव', 'अक्रूर', 'हणवन्त', 'संकर' तथा 'नामदेव' और 'जयदेव' (कलियुग में) अभिमान रहित होकर जागते रहे हैं।' इस पद में शंकर (शिव) का उल्लेख है और उनके विषय में कहा गया हैकृ'संकर जागे चरन सेव' इससे यह तो सिद्ध होता है कि कबीर साहब शंकर (शिव) को एक जाग्रत भक्त एवं साधक मानकर महत्त्व देते हैं किन्तु वे शैवमत से प्रभावित हैं, ऐसी कोई बात प्रमाणित नहीं होती। फिर भी विद्वानों ने काश्मीर शैव मत से कबीर के विचारों की तुलना संभवतः इसलिए की है कि दोनो में ज्ञान–समन्वित भक्ति पर बल दिया गया है। काश्मीरी शैव सिद्धान्त 'ईश्वराद्ववाद' के नाम से प्रसिद्ध है। यह आचार्य शंकर के 'ब्रह्मवाद' या अद्वैतवाद से भिन्न है। आचार्य शंकर 'ब्रह्म' को क्रियारहित मानते हैं। वह मायायुक्त होकर सृष्टि की रचना करता है। माया से आवृत्त होने पर निविशेष ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है। इस स्थिति में उसे 'ईश्वर' कहते हैं। विश्व की सृष्टि, स्थिति एवं लय का कारण यह माया–युक्त ब्रह्म ही है। ईश्वराद्वयवाद में स्वयं ईश्वर में कर्तृत्व शक्ति मानी गई है। (सृष्टि ईश्वर की इच्छा का परिणाम है। यह उसकी लीला है।

'ब्रह्मवाद' (शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित) के अनुसार आत्मा विश्वोत्तीर्ण, दानन्द, एक, सत्य, निर्मल, निरहंकार, अनादि, अनन्त, शांत, सृष्टि– स्थिति–संहार हेतु, भावाभावविहीन, स्वप्रकाश एवं नित्यमुक्त है, किन्तु उसमें कर्तृत्व न आगम सम्मत अद्वैतमत (ईश्वराद्वयवाद) के अनुसार विमर्श आत्मा का है (ज्ञान और क्रिया उसके लिए एक से हैं। उसकी क्रिया ही ज्ञान के वह ज्ञाता का धर्म है तथा उसके कर्तृ स्वभाव होने के कारण उसका नारा क्रिया है। इस ज्ञान और क्रिया की उन्मुखता ही इच्छा है। इसी रूप में इच्छामय है,' आचार्य शंकर का ब्रह्मवाद माया एवं तत्प्रसूत जगत् को तानि दृष्टि से असत् मानता है, जबकि ईश्वराद्वयवाद माया एवं तत्प्रसूत जगत को ब्रह्मशक्ति और उसके विकास रूप में अनुभव करता हुआ 'सर्वं खलु इदं ब्रा की भावना को सच्चे रूप में ग्रहण करता है। ईश्वराद्वयवाद में ज्ञान और भनि में पूर्ण सामंजस्य माना गया है। आचार्य शंकर के मत से भक्ति द्वैत–मलक के इसलिए पूर्ण ज्ञान की दशा (अद्वैतावस्था) में भक्ति की सत्ता नहीं रहती। ईश्वराद्वयवाद में शिव और शक्ति की सामरस्य अवस्था वस्तुतः ज्ञान और भक्ति की भी सामरस्य अवस्था मानी गई है) शिव चिद्रूप है। शक्ति आनन्द रूप है। चिदंश ज्ञान है और आनन्द अंश भक्ति है। इस प्रकार शिव और शक्ति की सामरस्य अवस्था चित् (ज्ञान) और आनन्द (भक्ति) की भी सामरस्य अवस्था है। यह पूर्ण अद्वैत की अवस्था है। इस अद्वैत में कल्पित भाव–द्वैत की लहरी उठती है। इसी स्थिति को व्यक्त करते हुए कहा गया है

> द्वैत मोहाय बोधात्प्राक् प्राप्ते बोधे मनीषया ।
>
> भक्त्यर्थ कल्पितं द्वैतं अद्वैतादपि सुन्दरम्।।
>
> जाते समरसानन्दे द्वैतमप्यमृतोपमम् ।
>
> मित्रयोरिव दम्पत्योर्जीवात्म परमात्मनोः।।

इस अद्वैतमूला भक्ति से निर्गुण सन्तों का सम्बन्ध स्थापित करते हुए परशुराम चतुर्वेदी ने कहा है– ''इस प्रकार अद्वैतभाव की कल्पना और निर्गुणभाव म सगुणभाव का काल्पनिक आरोप इस मत की विशेषता थी, जिसे आगे चलकर सन्तों ने भी किसी न किसी रूप में स्वीकार किया। इस काश्मीरी शैवमत का सीधा प्रभाव कबीर पर स्वीकार

नहीं किया जा सकता। सम्भव है, महाराष्ट्र के वारकरी सन्तों के माध्यम से वे इस अद्वैतमूला भक्ति से प्रभावित हुए हों। कबीर साहब ने अपने राम को निर्गुण कहते हुए भी उनमें कर्तृत्व स्वीकार किया है।

''आपन करता भये कुलाला। बहु विधि सिष्टि रची दर हाला'

'कहै कबीर सुनहु रे लोई। भानड़ घड़ण संवारण सोई'

वे सृष्टि–रचना का उद्देश्य नट–लीला मानते हैं

'जिमि नटवै नटसारी साजी। जो खेलै सो दीसै बाजी'

वे यह भी कहते हैं कि यह सम्पूर्ण सृष्टि बाजीगर का स्वांग है–

'बाजीगर डंक बजायी। सभ खलक तमासे आयी।
बाजीगर स्वांग सकेला । अपने रंग रवै अकेला।'

इसो प्रकार कबीर साहब 'गुण में निरगुण और निरगुण में गुण' की बात भी कहते हैं और इस प्रकार द्वैत में अद्वैत और अद्वैत में द्वैत के सिद्धान्त का भी प्रतिपादन करते हुए प्रतीत होते हैं। उपर्युक्त मान्यताएँ कबीर को काश्मीरी शैवमत के निकट ला खड़ा करती हैं, किन्तु यह ध्यान रखना होगा कि काश्मीरी 'ईश्वराद्वयवाद' एक प्रौढ़ दार्शनिक मतवाद है। वह गहन चिन्तन का परिणाम है। कबीर साहब ने जो कुछ कहा है, अपने अनुभव के आधार पर कहा है। उन्होंने सृष्टि को ईश्वर की रचना मानते हुए भी उसे बार–बार मिथ्या कहा है। उनकी जगत् सम्बन्धी मान्यताएँ आचार्य शंकर के विचारों के अधिक निकट हैं।

शाक्तमत और कबीर :

कबीर साहब ने सबसे अधिक निन्दा शाक्तों की की है। स्पष्ट है कि वे शाक्तमत। से प्रभावित नहीं थे। कबीर के सामने शाक्तमत का तात्त्विक रूप नहीं था। वे तत्कालीन शाक्तों के आचरण को देखकर ही उनके विरोधी हो गये थे। सिद्धान्त की दृष्टि से शाक्त मत अद्वैतवादी है। शैव सिद्धान्त के अनुसार शक्ति शुद्ध जगत् का कारण मानी गई है। शिव की दो शक्तियाँ हैं– १. समवायिनी, २. परिग्रह रूपा। समवायिनी शक्ति चिद्रूप और निर्विकार है। इसे शक्ति तत्त्व कहते हैं। यह परमशिव में नित्य समवेत भाव से विद्यमान रहती है। परिग्रह शक्ति अचेतन है। महामाया और माया इसी के हो हैं। महामाया सात्त्विक जगत् का उपादान कारण है और .. प्राकृत जगत् का'। शाक्त लोग शिव की समवायिनी शक्ति की ही उपाय करते हैं । शाक्तों की यह शक्ति–उपासना परमशिव के रूपातीत होने के कारण उपासना के लिए अनुपयुक्त मानकर प्रचलित हुई थी। शिव से अभिन्न होने पर भी व्यवहारतः शक्ति को अलग महत्त्व दिया गया और इसकी उपासना का प्रचार हुआ। सिद्धान्ततः शाक्त मत से विरोध का कोई प्रश्न नहीं उठता। (कबीर जिस योगमत से सम्बद्ध थे उसमें भी तो शिव के साथ शक्ति को महत्त्व दिया गया था। योगियों ने शक्ति–तत्त्व को मानव देह में कुण्डलिनी रूप में प्रतिष्ठित किया था। यह कुण्डलिनी शक्ति भी शिव की समवायिनी शक्ति ही थी। योगियों का लक्ष्य भी शक्ति को जागृत करके शिव से मिला देना और समरसत्व प्राप्त करना था ऐसा लगता है कि कबीर–पूर्व–युग में शक्ति के उपासकों में अनेक प्रकार की नैतिक दुर्बलताएं आ गई थीं। डा० भंडारकर ने शक्ति उपासना के तीन अलग–अलग रूपों की चर्चा की है। शक्ति उपासना का एक तो साधारण रूप था, जिसमें उपासक विनीत भाव से देवी की उपासना करता था। उपासना का दूसरा रूप भयानक था। इस रूप में कापालिक और कालमुख संप्रदाय के उपासक शक्ति की उपासना करते थे। उपासना का तीसरा रूप काममूलक था, जिसमें शक्ति को आनन्द भैरवी, त्रिपुरसुन्दरी या ललिता मानकर उसकी उपासना की जाती थी। संभवतः कबीर के सामने शाक्तों की यह काममूलक उपासना ही थी। उन्होंने प्रायः एक तुला पर वैष्णवों को रखा है और दूसरी पर शाक्तों को। उनका कहना है कि ब्राहाण भी यदि शाक्त है, तो उससे दूर रहना चाहिए और चाण्डाल भी यदि वैष्णव है तो उसे

साक्षात् भगवान समझ कर उसके गले मिलना चाहिए–

'सायात बांमण मति मिले, बेसनों मिलै चंडाल ।

अंकमाल दे भटिये, मानों मिले गोपाल ।

वारकरी सम्प्रदाय की भक्ति और कबीर :

वारकरी सम्प्रदाय के संस्थापक प्रसिद्ध महाराष्ट्र संत ज्ञानेश्वर (जन्म 1275 ई० के आसपास) हैं। ज्ञानेश्वर ने अपनी गुरु–परम्परा आदिनाथ से सरकार की है। आदिनाथ से चलकर छठी पीढ़ी में–आदिनाथध्झ मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथ गहिनीनाथ निवृत्तिनाथ झ ज्ञाननाथ (ज्ञानदेव) या ज्ञानेश्वर हए और वारकरी का अर्थ है 'यात्रा करने वाला। वारकरी सम्प्रदाय के भक्त आषाढ तथा कार्तिक शुक्ल एकादशी को नियमित रूप से पंढरपुर जाकर अपने इष्टदेव विट्ठल की उपासना करते हैं। (पंढरपुर की वारी (यात्रा) करने के कारण ही इस सम्प्रदाय को वारकरी कहते हैं। संत ज्ञानेश्वर की विचारधारा में नाथ पंथ और भागवत मत का सामंजस्य लक्षित होता है। इस सम्बन्ध में डा० विनय मोहन शर्मा का कथन है–''ज्ञानेश्वर के नाथ गुरुओं ने 'शून्यवाद' को प्रमुखता दी थी, पर ज्ञानदेव ने समाज के अनुकूल भक्तिपरक भागवत मत को प्रतिष्ठित किया जो महाराष्ट्र में 'वारकरी पंथ' कहलाता है।''[१] संत ज्ञानेश्वर रचित गीता की 'ज्ञानेश्वरी टीका' प्रसिद्ध है। इस टीका के सम्बन्ध में कहा गया है कि ''सूक्ष्म रूप से देखने पर उपनिषद, गीता, गौड़पादकारिका, योगवाशिष्ठ, शांकराद्वैत मत, काश्मीरी शैव–सम्प्रदाय और गुरु–परम्परा से प्राप्त नाथ सम्प्रदाय का शैवाद्वैत तत्त्व–ज्ञान सम्मिलित रूप से ज्ञानेश्वरी के अद्वैत सागर में आकर मिल गये हैं। वारकरी सम्प्रदाय में ज्ञानदेव के बाद नामदेव (१२७०१३५० ई०) का महत्त्व सर्वमान्य है। कबीर साहब ने नामदेव का उल्लेख श्रद्धापूर्वक किया है। कबीर साहब की विचारधारा पर उपर्युक्त दोनों संतों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। संत ज्ञानेश्वर ने भक्त के वास्तविक रूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिस प्रकार आकाश से गिरने वाली बूंद पृथ्वी के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं जा सकती, जिस प्रकार गंगा अपने सम्पूर्ण जल–प्रवाह के साथसमुद्र में ही विलीन होती है, उसी प्रकार सच्चा भक्त अपने सम्पूर्ण रागात्मक भावावेग के साथ साध्य के स्वरूप में ही लीन होकर उससे अभिन्न हो जाता है।

कहना न होगा कि भक्त का यही स्वरूप कबीर साहब का भी आदर्श प्रति यही एकान्त समर्पण कबीर को भी मान्य है। वे कहते हैं

कबीर नैनां अंतरि आव तू ज्यूं हौं नैन झंपेठ ।

ना हो देखौं और कूं नां तुझ देखन देउं ।

कबीर मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।

तेरा तुझ कौं सौंपता, क्या लागै मेरा।।

–कबीर ग्रन्थावली, डा० माताप्रसाद गुप्त.

कबीर साहब नामदेव से विशेष प्रभावित प्रतीत होते हैं। प्रिय के प्रति कालाभाव से पूर्ण रागात्मक समर्पण, गुरु का महत्त्व, नाम–जप का महत्त्व, जातिपाँति, तप, तीर्थ, व्रत आदि का विरोध, हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को पथभ्रष्ट बताना, कुण्डलिनी–योग का महत्त्व स्वीकार करना, पुस्तक–ज्ञान का विरोध. सहज नैतिक जीवन व्यतीत करने पर बल देना, ये सभी बातें नामदेव की वाणियों में पाई जाती हैं और ये ज्यों–की–त्यों कबीर की वाणियों में भी उपलब्ध हैं। कहीं–कहीं तो दोनों की शब्दावली में भी अद्भुत साम्य है नामदेव अपने एक पद में कहते हैं–मैं पगली हूँ। राम मेरे प्रिय स्वामी हैं मैं उन्हीं के लिए रचरच कर शृंगार करती हूँ। इसके लिए लोग भले ही हमारी निन्दा करें हमने तो अपना तन–मन अपने प्रिय को अर्पित कर दिया है।

मैं बऊरी मेरा राम भतारू ।
रचि रचि ताकउ करऊ सिंगारू।।
भले निदऊ भले निंदऊ भले निदऊ लोग।
तनु मनु राम पिआरे जोग।।

ठीक ऐसी ही शब्दावली में कबीर भी यही बात कहते हैं–

भलैं नींदौ भलै नींदौ भलैं नींदौ लोग।
तन मन राम पियारे जोग।।
मैं बौरी मेरे राम भरतार ।
ता कारनि रचि करौ स्यंगार।।

नामदेव ने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनो को पथ–भ्रष्ट मानकर दाना, पूजा–केन्द्रों से अलग परमतत्त्व की सेवा करने की बात कही है–

हिन्दू पूजै देहुरा, मुसलमानु मसीत ।
नामे सोई सेविआ जहँ देहुरा ना मसीत ।।

कबीर साहब भी कहते हैं

हिन्द मुआ राम कहि, मूसलमान खुदाइ ।
कहै कबीर सो जीवंता, जो दुहु के निकटि न जाइ।।

नामदेव ब्राह्मण और शूद्र के भेद को व्यर्थ सिद्ध करते हुए कहते हैं

नाना वर्ण गवा उनका एक वर्ण दूध ।
तुम कहाँ के ब्रह्मन हम कहाँ के सूद।।

कबीर कहीं इससे तीखे स्वर में कहते हैं–

एक बूंद एकै मल मूतर, एक चांम एक गूदा ।
एक जोति थें सब उतपनां, कौन बाम्हन' कौन सूदा।।

नामदेव ब्रह्म और जीवन में अभेद स्थापित करते हुए कहते हैं–

जलते तरंग, तरंग ते है जल कहन सुनन को दूजा।
कहत नामदेव तू मेरो ठाकुर जन ऊरा तू पूरा।।

कबीर साहब भी कहते हैं

जैसे जलहि तरंग तरंगनी, असैं हम दिखलावहिंगे ।
कहै कबीर स्वामी सुखसागर, हंसहि हंस मिलावहिगे।।

यही नहीं कबीर साहब ने अपने आराध्य को नामदेव के इष्टदेव 'विट्ठल' के नाम से भी अभिहित किया है।

इसमें संदेह नहीं कि कबीर साहब नामदेव को अपना अग्रज स्वीकार करते हैं। डा० विनयमोहन शर्मा तो नामदेव को ही निर्गुण संत मत का प्रवर्तक मानने के पक्ष में हैं। उनका कहना हैकृ''नामदेव कबीर से पूर्व हुए, उन्होंने निर्गुण भक्ति का उत्तर में वर्षों प्रचार किया, फिर भी उन्हें उस पंथ का प्रवर्तक मानने में विद्वानों को क्यों झिझक होती है'' डा० शर्मा की झुंझलाहट ठीक ही है, हम चाहें तो नामदेव को निर्गुण संत मान सकते हैं लेकिन एक बात ध्यान देने की है कि वारकरी संहार अद्वैतपरक भक्ति के लिए भगवान के सगुण रूप को साधन रूप में भी है। कबीर ऐसा नहीं मानते वारकरी संतों ने प्रभुगुण–गान के लिए को भी मान्यता दी थी। कबीर साहब अजपा–जाप को अधिक महत्व देना करी संत 'विट्ठल' प्रभु के मंदिर की परिक्रमा का निषेध नहीं कर जबकि कबीर साहब किसी भी मंदिर में जाने की बात सोच भी नहीं सकते। लिए संतमत का प्रतिनिधित्व जितना कबीर करते हैं, उतना नामदेव नहीं करते।

बौद्ध सिद्ध, नाथपंथीं योगी और कबीर :

सन् १६३० तक राहुल सांकृत्यायन जैसे विद्वान् यह अनुभव कर चुके थे कि ''भावना और शब्द–साखी में कबीर से लेकर राधास्वामी तक के सभी संत चौरासी सिद्धों के ही वंशज कहे जा सकते हैं'', किन्तु वे अधिक–से–अधिक बारहवीं शती तक आने वाली सिद्ध–साहित्य की धारा का सम्बन्ध कबीर से जोड़ने में अपने को असमर्थ अनुभव कर रहे थे क्योंकि बीच की तीन शताब्दियों के अंतराल को भरना उन्हें असंभव प्रतीत हो रहा था । दिसम्बर, १६३० में डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने काशी–नागरी–प्रचारिणी सभा के साहित्य परिषद् में कोशोत्सव के अवसर पर हिन्दी काव्य में योग प्रवाह' शीर्षक निबंध पढ़ा। इसमें पहली बार नाथयोगियों की कविता का परिचय प्रस्तुत किया गया। इस निबन्ध से यह प्रमाणित हो गया कि सिद्धों की धारा नाथ–योगियों में अन्तर्भुक्त होकर निर्गुण संतों की परंपरा में विकसित हुई है। इसके बाद पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर का गंभीर अध्ययन प्रस्तुत करते हुए यह प्रतिपादित किया कि कबीर के निर्गुण राम नाथ–योगियों के 'द्वैताद्वैत विलक्षण–समतत्त्व' ही हैं । आज यह निविवाद रूप से मान लिया गया है कि कबीर के निर्गुण संत मत का सीधा सम्बन्ध नाथयोगियों से है (सिद्धों और नाथों से कबीर का सम्बन्ध मुख्यतः पाँच स्तरों पर मान्य है– १. उच्चवर्गीय या ब्राह्मणों द्वारा अनुमोदित व्यवस्था का विरोध, २. गुरु का महत्त्व, ३. पिण्ड–ब्रह्माण्ड की एकता, ४. सहज तत्व (परमतत्व) का भावना, ५. भाषा–शैली एवं काव्य–रूप। इसमें संदेह नहीं कि उपर्यक्त सभी बाता को कबीर ने सिद्धों और नाथों से ग्रहण किया था किन्तु विचारपूर्वक देखा जा तो इनमें से प्रत्येक को कबीर ने अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की छाप लगाकर अर्थवत्ता प्रदान कर दी है। मला द्वारा अनुमोदित समाज–व्यवस्था के प्रति विरोध का बीज उपनिषदों के युग से ही वेद–बाह्य मतों में अंकुरित हुआ था। लोकयत, चार्वाक, जैन, बौद्ध–सिद्ध तथा नाथ–योगियों से होती हुई यह परंपरा हिन्दी– प्रदेश के संतों में आई थी। यह विरोध कई रूपों में प्रकट हुआ था। पुस्तक–ज्ञान, व्यवस्ता, तीर्थ–व्रत तथा अनेक प्रकार के धार्मिक विधि–विधान इन सभी का रोध किया गया था। कबीर ने निश्चय ही यह विरोध की प्रवृत्ति नाथजोगियों से ग्रहण की थी। उन्होंने गोरखनाथ का उल्लेख श्रद्धापूर्वक किया है और अपने पदों में 'अवधू' (अवधूत, नाथपंथी सिद्ध योगी) को महत्त्वपूर्ण मानकर उसको कर–वार सम्बोधित किया है। पंडितों को जिस प्रकार गोरखनाथ ने चुनौती दी है, उसी प्रकार लगभग उसी शब्दावली में कबीर ने भी उन्हें चुनौती दी है। गोरखनाथ ने कहा है –

पंडित जण जण वाद न होई, अण बोल्या अवधू सोई ।।टेक।।

पत्रे ब्रह्मा कली बिसना फल मधे रुद्रम् देवा ।

तीनि देव का छेद किया, तुम्हें करहु कौन की सेवा।।

कबीर का कथन है

पाती तोरै मालिनी पाती पाती जीउ ।

ब्रहमु पाती बिसनु डारी फूल संकर देउ

तीन देव प्रतखि तोरहि करहि किसकी सेउ।।

गोरखनाथ ने कहा था

पढ़ि पढ़ि पढ़ि केता मुवा कथि कथि कथि कहा कीन्ह ।

बढ़ि बढ़ि बढ़ि बहु घट गया पारब्रह्म नहीं चीन्ह।।

कबीर कहते हैं––

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।

एकै आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होइ।।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, पाखंड–खंडन की यह परंपरा सिद्धों में भी इसी रूप में पाई जाती है । सिद्ध सरहपा ने पाखण्डों का खंडन करते हुए कहा है कि यदि नंगा रहने से मुक्ति प्राप्त होती तो कुत्तों और गीदड़ों को भी प्राप्त हो जाती और यदि बालों की सफाई कर देने से सिद्धि मिल जाती तो युवतियों के नितम्बों को भी मिल जाती।

जइ खग्गाविअ होइ मुत्ति तो सुणह सिआलह।

लोम उपाडण अत्थि सिद्धि ता जुवइ खिअम्बह।।

कबीर ने यही तर्क पद्धति अपनाते हुए कहा है–

नांगे फिरे जोग जो होइ। बन का मिरग मुकुति गया कोई।

मूंड मुड़ाएं जौ सिधि होई। सरगहि भेंड न पहुँची कोई।।

इस समता के बावजूद सिद्धों और नाथों के विरोध और कबीर के विरोध अन्तर है। सिद्धों और नाथों के विरोध में हीन–भावना–जनित खीझ है, जबकि कबीर में आत्मविश्वास की प्रधानता के कारण एक प्रकार की लापरवाही है। वे अच्छी तरह जानते थे कि जिस परंपरा का वे विरोध कर रहे हैं, वह जर्जर हो चुकी है। कबीर का विलक्षण व्यक्तित्व, जो अखंड आत्मविश्वास एवं अतल सूक्ष्मदर्शिता लेकर विकसित हुआ था, उनकी विरोध–भावना को सिद्धों और नाथों से पृथक् दृढ़ता की एक स्वतंत्र भूमि पर ला खड़ा कर देता है।

गुरु का महत्त्व भारतीय धर्म–साधना में बराबर मान्य रहा है। तंत्र और योग–साधना में यह महत्त्व और बढ़ गया था। कारण यह था कि यह दोनो ही धर्म–साधनाएँ गुह्यातिगुह्य शारीरिक क्रियाओं को महत्त्व देती थीं, जिनमें गुरु की आवश्यकता पग–पग पर अनुभव की जाती थी। बौद्ध सिद्ध पुस्तक–ज्ञान के स्थान पर गुरु–ज्ञान को महत्त्व देते थे। शास्त्र–ज्ञान उनके लिए मरुभूमि के समान था, जिसमें भटक–भटक कर वे जल के अभाव में प्यासे रह जाते थे। गुरु का उपदेश उनके लिए अमृत था। सिद्ध सरहपा ने कहा है–

गुरु उवएसे अमिअ रसु, धाव ण पीअउ जेहि ।

बहु सत्थत्थ मरुत्थलहि, तिसिए मरिअउ तेहि।।

गोरखनाथ ने 'प्रांरण संकली' में गुरु को 'आत्म ब्रह्म' को लक्षित कराने वाला कहा है

प्रथमे प्रणऊं गुरू के पाया । जिन मोहिं आत्म ब्रह्म लषाया ।

कबीर साहब गुरु के महत्त्व को और बढ़ाते हुए कहते हैं

गुरु गोविन्द तौ एक है, दूजा सब आकार।

आपा मेटै हरि भजै, तब पावै दीदार।।

कबीर के लिए गुरु का महत्त्व इसलिए नहीं है कि वह उन्हें गुह्य साधना का मार्ग खाता है, या काया–साधना की शिक्षा देता है। कबीर के लिए गुरु गोविन्द है। दोनो में अभेद है। द्वैतभाव–जनित–भेद के मिट जाने पर दोनो की एकता स्पष्ट हो जाती है । इस प्रकार गुरु को परमात्म–रूप बनाकर कबीर ने उसे अधिक महत्त्व प्रदान किया है।

ब्रह्माण्ड और पिण्ड की एकता का रहस्य अथर्ववेद की रचना के समय ही मन्त्रद्रष्टा ऋषियों पर प्रकट हो चुका था । अथर्ववेद की एक ऋचा में कहा गया है

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानाम् पूर'योध्या

तस्याम् हिरण्यमयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ।।

उपर्युक्त मंत्र में मानव–शरीर को ही आठ चक्रों और नवद्वारों वाली पुरी के रूप में देखा गया है और उसमें ही हिरण्यमय कोश की स्थिति मानी गयी है। मुण्डकोपनिषद् में महान् दिव्य, अचिन्त्यस्वरूप परब्रह्म को हृदय रूपी गुफा में निहित बताया गया है–

बृहच्च तद् दिव्यमचिन्त्यरूपं

सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति ।

दूरात सूदुरै तदिहान्तिके च

पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्।।

तांत्रिक साधना में भी मानव–पिण्ड के अन्तर्गत समस्त ब्रह्माण्ड के उपकरणों की स्थिति स्वीकार की गई है। गोरखनाथ ने भी कहा है कि योगी को निर्वाण पद की खोज मानव शरीर के भीतर ही करनी चाहिए। ' इस सम्बन्ध में पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– 'गोरक्षनाथ का योग मार्ग साधनामूलक है। मनुष्य शरीर को ही प्रधान पिण्ड मानकर इसकी व्याख्या की गई है और बताया गया है कि मनुष्य के किस किस अंग में ब्रह्माण्ड का कौन सा अंश हैकृपाताल कहाँ है, स्वर्ग कहाँ है, साधना मार्ग के तीर्थ कहाँ हैं, गंधर्व, यक्ष, उरग, किन्नर, इत, पिशाच आदि के स्थान कहाँ हैं। २ गोरक्षनाथ से पहले सिद्ध सरहपा ने भीशरीर में ही गंगा, यमुना, सरस्वती, प्रयाग, वाराणसी, गंगासागर त और चन्द्र की स्थिति बताई है

एत्थु में सुरसरि जमुणा, एत्थु से गंगा साअरु।

एत्थु पआग बरणारसि, एत्थु से चन्द दिवाअरु।

कबीर साहब ने भी कहा है

ब्रह्मण्डे सो ण्यंडे जांनि, मानसरोवर करि असनान ।

इस सम्बन्ध में ध्यान देने की बात यह है कि कबीर साहब के लिए पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता का यह अर्थ नहीं था कि ब्रह्माण्ड के प्रत्येक अंश को मान शरीर के भीतर ढूंढा जाय। कबीर का दृष्टिकोण यह था कि जब व्यष्टि पिण्ड में स्थित आत्मा और समष्टि पिण्ड (ब्रह्माण्ड) में स्थित विश्वात्मा एक हैं तो पिण्ड और ब्रह्माण्ड की स्थिति अभेदात्मक है। साधक को सत्य की खोज में बाहर न भटक कर अपनी प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी करना चाहिए। चित्त को एकाग्र करना चाहिए। चित्त की एकाग्रता से परमतत्त्व का साक्षात्कार हृदय में ही हो सकता है। तात्पर्य यह

है कि इस स्तर पर भी कबीर की दृष्टि परम्परागत रूढ़ि–ग्रस्त धारणा से अलग साफ और सहज थी।

सहज और शून्य की भावना :

सहज और शून्य की धारणा कबीर को परंपरा से प्राप्त हुई थी। 'शून्यतत्त्व' की व्याख्या बौद्धों के 'निर्वाण' से जुड़ी हुई है। गौतम बुद्ध ने संसार को दुखमय मानकर दुःख–निरोध को जीवन का लक्ष्य स्वीकार किया था। इसके लिए उन्होंने संस्कारों का शमन, चित्तमलों का त्याग एवं तृष्णा का क्षय आवश्यक माना था। इस निरोध या विरागमयी पूर्ण शान्ति की अवस्था को ही 'निर्वाण' कहा गया था। कालान्तर में इस निर्वाण को 'समत्वरूप', 'अमृतमय' एवं 'शिव' कहा गया। महायान के विकास के साथ 'निर्वाण' की व्याख्या विकसित हुई और इसे 'सत्', 'असत्', 'सदसत्' और 'सदसद्भिन्न' इन चारों कोटियों से परे अनिवर्चनीय एवं आनन्द रूप माना गया। जब बौद्ध–दर्शन में 'शून्यतत्त्व' का समावेश हुआ तो उसकी व्याख्या भी लगभग इसी स्तर पर की गई। 'शून्य' असत् वाची नहीं है। चतुष्कोटि विनिर्मुक्त होने के कारण तत्व को 'शून्य' कहा डनता' 'पूर्णता' का समकक्ष है। जो शून्य है, वही सहज है, क्योंकि जना के लिए वह किसी अन्य सत्ता पर निर्भर नहीं है। सहज और शून्य बोध आनन्दमय है। बौद्ध सिद्धों ने इसी 'सहज' की साधना को अपना बनाया था। सहजावस्था की अनुभूति ही महासुख की अनुभूति है। यह सहज–तत्व आदि, मध्य, अन्त रहित, भव एवं निर्वाण तथा आत्म और पर से परे एक समत्वमयी स्थिति है। यही परम सुख है।

गोरखनाथ ने अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का हवाला देते हुए 'सहज' और 'शून्य' शब्दों का एक साथ प्रयोग किया है

सहज–सुनि मन तन थिर रहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै ।' .

अर्थात् सहजावस्था और शून्यावस्था में तन और मन स्थिर हो जाता है। यह तन और मन का पूर्णतः स्थिर होना ही समत्व–बोध प्राप्त करने की स्थिति है। गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने कहा है कि सहजावस्था में मन की सारी 'दुविधा' मिट जाती है–

दुबध्या मेटि सहज में रहै। ऐसा विचार मछिन्द्र कहै।

मन की यह द्वन्द्वातीत स्थिति या समत्वबोध की स्थिति ही शिवत्व प्राप्त करना है। गोरखनाथ ने शून्य तत्व को आकाशतत्व कहा है और उसे सदाशिव रूप माना है और इस शिवत्व की उपलब्धि को ही 'निर्वाण पद' कहा है–

आकाश तत सदाशिव जांण । तसि अभिअंतरि पद निरवाण ।

इस प्रकार गोरखनाथ की दृष्टि में सहजावस्था, शून्यावस्था, शिवत्व प्राप्त करने की अवस्था या समत्वबोध की अवस्था में कोई तात्विक अंतर नहीं हैं। कहना न होगा कि सिद्धों और योगियों का यह 'सहज–शून्य–तत्व' बौद्धों की''निर्वाणा' अवस्था की तुलना में अधिक धनात्मक हो गया है । कबीर साहब ने सहज आर शून्य की चर्चा अनेक बार की है, किन्तु सहज और शून्य तत्व उनके लिए राम का पर्याय हो गया है। सिद्धों का महासुख या सहजसुख उनका 'राम रसायन' है । राम से 'एकमेक' होने की अनुभूति ही उनकी सहजाउन्होंने कहा है–

सहज–सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्हें कोइ ।

जिन्ह सहजै हरि जी मिल सहज कही जै सोइ।।

सहजै सहजै सब गये, सुत बित कामिरिण काम ।

एकमेक ह मिलि रह्यो, दास कबीरा राम।।

स्पष्ट है कि बौद्धों का 'निर्वाण' ही जो अपने मूल रूप में स्थितिबोधन था क्रमशः तत्वबोध में बदल गया और कबीर तक आते–आते वह शा पर्याय बन गया । कबीर के लिए वह राग का विषय बनकर आराध्य हो गया यह बहुत बड़ा अंतर है और इस दृष्टि से कबीर की सहज–भावना बौद्ध सिदों अलग हो गई है ।

सहज, तत्व ही नहीं एक साधना–पद्धति भी है। सहज–साधना से ही सहजतत्व की उपलब्धि सम्भव थी। सरहपाद की दृष्टि में यह सहज साधना नैसर्गिक जीवन का पर्याय थी । वे चित्त के बलात् निरोध को महत्व नहीं देते थे। उनका कहना था कि 'चित्त रूपी गजेन्द्र को मुक्त कर दो इसमें पूछताछ न करो । गगन रूपी गिरि नदी के जल को पी के उसके तट पर उसे स्वच्छन्द बैठने दो।''

सरह के लिए यह संसार सहजानन्द से पूर्ण है । इसमें मुक्त भाव से नाचना, गाना और विलसना चाहिए–

जइ जग पूरिअ सहजागन्दे । नाचह गावह विलसह चङ्गे ।

सिद्ध सरहपाद के उपर्युक्त कथनों का अर्थ यही था कि चित्त को जबरदस्ती सांसारिक विषयों से अलग करना उचित नहीं है । संसार के सौंदर्य को जावन का सहज रूप मानकर स्वीकार करना चाहिए । किन्तु आगे चलकर बौद्धसिद्धान अबाध और मुक्त विलास को ही सहज–साधना मान लिया। महापंडित राहुल सांकृत्यायन का कहना है– 'मुक्त यौन सम्बन्ध के पोषक चक्र–संवर आदि देवता, मंत्र और पूजा–प्रकार तैयार किये । गुह्य–समाज एकत्रित होने लगे, जहाँ षों को मद्य–मैथुन की पूरी स्वतंत्रता दी गई ।[1] नाथ–योगियों ने इसका किया और कठोर संयम पर बल दिया । कबीर साहब ने सहज–साधना को फिर एक सहज नैतिक जीवन के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनकी दृष्टि में सहज रूप में (हठपूर्वक नहीं) विषयों का त्याग ही सहज साधना है–

सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोइ ।

जिहिं सहजै बिखया तजै, सहज कहावै सोइ।।

जहाँ तक भाषा और शैली के साम्य का प्रश्न है, इसमें संदेह नहीं कि कबीर दास योगियों से बहुत प्रभावित हैं। 'अलख–निरंजन', 'अजपा जाप', 'सुरतिनिरति', 'सहज–शून्य', 'मुद्रा', 'सिंगी', 'चन्द्र–सूर्य', 'इला–पिंगला', 'उनमुनी', 'त्रिकूटी', 'ओंकार', 'मन', पवन', 'गगन गुफा', 'अनाहद नाद', 'कलारिनि', 'माठी', 'अमृत', 'ब्रह्माण्ड', 'नाद–विन्दु', 'अंजन' आदि सैकड़ों शब्द हैं जो गोरखबानी और कबीर' ग्रन्थावली में समान रूप से प्रयुक्त हुए हैं। जिस प्रकार की उलटवासियां सिद्धों और योगियों में पाई जाती हैं, उसी प्रकार की उलटबासियाँ कबीर ने भी लिखी हैं । सबदी, पद, साखी, वार, तिथि, आदि काव्यरूप भी कबीर ने योगियों की परंपरा से ही प्राप्त किया है । यही नहीं कबीर के कुछ पद और साखियाँ ऐसी भी हैं जो थोड़े–बहुत शाब्दिक परिवर्तन के साथ 'गोरखबानी' में भी पाई जाती हैं। गोरखबानी का एक पद इस प्रकार है

मारौ मारौ सपनी निरमल जल पैठी

त्रिभुवन डसती गोरखनाथ दीठी।। टेक।।

मारौ स्रपणी जगाईल्यो भौरा,

जिनि मारी स्रपणी ताकौ कहा करें जौरा

स्रपणी कहै मैं अबला बलिया ।

ब्रह्मा विष्न महादेव छलिया।।

'संत कबीर' (डा० रामकुमार वर्मा द्वारा संपादित) में यह पद इस प्रकार है

सरपनी ते ऊपरि नहीं बलीआ ।

जिनि ब्रह्मा बिसनु महादेउ छलिआ।

मारु मारु स्रपनी निरमल जलि पैठी।

जिनि त्रिभवणु डसीअले गुरु प्रसादि डीठी।।

कहना न होगा कि 'गोरखबानी' के पद और कबीर के पद में भावमा ही नहीं शब्दों और पंक्तियों में भी समानता है । इसी प्रकार गोरखनाथ की सबदी है

नीझर झरणे अमीरस पीवरगां षट दल बेध्या जाइ ।

चंद विहूणां चंदिरणां तहां देख्या श्री गोरख राइ।।

कबीर की साखी है

मन लागा उनमन्न सौं गगन पहुँचा जाइ ।

देख्या चंद विहूंणां चाँदिरणा तहाँ अलख निरंजन राइ।।

इस प्रकार की अनेक शब्दियां और पद उद्धृत किये जा सकते हैं और प्रमाणित किया जा सकता है कि कबीर की भाषा–शैली सिद्धों और योगियों से प्रभावित है। निस्संदेह योगियों और सिद्धों के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। लेकिन कबीर वाणी का स्वर इनसे सर्वथा भिन्न है। कबीर ने जिस आत्म–विश्वास और तेजस्विता से अपनी समसामयिक धार्मिक रूढ़ियों और बाह्याचारों का खंडन किया है, वह आत्मविश्वास और तेजस्विता न सिद्धों में है न योगियों में इसके अतिरिक्त कबीर में मूफियों और बैष्यावों की शब्दावली भी समाविष्ट है जो उनकी वाणी को एक भिन्न स्वर प्रदान करती है। प्रिय के प्रति जो समर्पण और भावाकुलता कबीर में है, उसके सिद्धों और योगियों में होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस समर्पण और भावाकुलता की शब्दावली ने ही कबीर को योगियों से अलग संतों और भक्तों की कोटि में ला खड़ा किया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मध्यकाल की सभी धर्म–साधनाओं के बीच कबीर अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं। उन्हें किसी भी धर्म–साधना का अनुकरण करने वाला नहीं कहा जा सकता। उनकी वाणी में सिद्धों योगिया, वैष्यावों, सूफियों, कदर मजहबी मुसलमानों, वारकरी संतों आदि सभी के शब्द और उक्तियाँ लक्षित की जा सकती हैं किन्तु यह उनकी वाणी का पूर्वपा ६. सभी के कथनों को लेते हुए वे उनकी कमजोरियों को उभारते हैं और तब जब को अलग कर लेते हैं। इस प्रकार वे एक स्वतंत्र संतमत के प्रवर्तक के रूप सामने आते हैं।

5. कबीर का समय

कबीर के समय में सर्वाधिक उथल–पुथल सामाजिक जीवन में व्याप्त थी। वर्ण–व्यवस्था और आश्रम धर्म के आधार पर संघटित ब्राह्मण समाज–व्यवस्था का ढाँचा लड़खड़ा गया था। मुसलमानों के आगमन से वर्ण–व्यवस्था को एक प्रबल चुनौती मिली थी। मुसलमानों में मजहबी जोश था। उनमें कट्टर भ्रातृभावना थी। भारतीय समाज का उपेक्षित निम्न वर्ग इस्लाम की ओर आकृष्ट हो रहा था। मुसलमान विजेता और शासक के रूप में यहाँ आए थे। इसलिए निम्नवर्ग पर उनका विशेष आंतक था। मुसलमान धर्म ग्रहण कर लेने से निम्नवर्गीय जनता को कुछ सुविधाएँ मिल जाती थी। सब मिलाकर कबीरयुगीन समाज गतिशील नहीं था। उस यमस की जीवन–चेतना विश्वास–प्रधान, रूढ़िग्रस्त, धर्मकेन्द्रित, संकीर्ण, प्रेरणारहित और नैतिकता के आग्रह से पूर्ण थी। यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता कि उसका कोई वर्णन करने योग्य इतिहास ही नही है।

जिस युग में कबीर साहिब का आविभार्व हुआ, उस युग की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों ने निश्चय ही उनके काव्य को प्रभावित किया है। सत्य तो यह है कि इन्हीं परिस्थितियों ने ही कबीर को कवि, समाज सुधारक, दार्शनिक और युगद्रष्टा बनाया। कबीर कालीन परिस्थितियां विषम रूप धारण कर चुकी थी। उस समय के शासक हिंदुओं के सर्वथा प्रतिकूल थे और हिंदू समाज असंख्य कुरीतियों एवं अंधविश्वासों का शिकार बना हुआ था। तत्कालीन धार्मिक सम्प्रदाय भी जनता को गुमराह करने में लगे हुए थे। इन्हीं विषम परिस्थितियों ने कबीर की वाणी को प्रखर बना दिया। इन परिस्थितियों का विवेचन इस प्रकार से है।

राजनीतिक परिस्थितियां

कबीर का आविर्भाव 15वीं सदी में हुआ और वे 16वीं सदी तक विद्यमान थे। इस युग के विविध पक्ष कबीर की वाणी में उपलब्ध होते हैं। भारतीय इतिहास का यह काल अंतः कलह अराजकता और घोर राजनीतिक उथल–पुथल और संक्रांति का काल माना जाता है। देश के कोन–कोने में फैले हिंदू–मुस्लिम शासक जाति और धर्म का विचार करके अपने–अपने राज्यों के सीमा–विस्तार के लिए युद्धरत रहते थे। उतर भारत के राजवंश प्रायः नष्ट हो चुके थे। केंद्रीय शक्ति नहीं के बराबर थी। दिल्ली की राजसता पर सन 1206 से 1525ई तक गुलाम, खिलजी, तुगलक सैय्यद और लोदी वंश स्थापित व विस्थापित होते रहे। जिस समय कबीर काशी में धार्मिक और सामाजिक पाखंड़ों पर प्रहार कर रहे थे। उस समय दिल्ली में कट्टर मुसलमान व क्रूर शासक सिकंदर लोदी शासन कर रहा था।

भारत में मुसलमानों की राज्य स्थापना ऐसी युगांतरकारी घटना थी जिसने केवल भारतीय राजनीति पर ही नहीं बल्कि समूचे भारतीय जीवन में धर्म, समाज, कला और चिंतन पद्धति में उथल–पुथल कर दी। इन विदेशी जातियों के भारत आक्रमण के लक्ष्य थे– यहाँ शासन करना, लूटमार का उद्देश्य व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध की स्थापना। भारतीय प्रजा नित्य नये आक्रमणों से आतंकित रहती थी। तैमूर का आक्रमण समग्र देशवासियों के लिए कठोर वज्राघात था। इस कारण देश में देश में दरिद्रता, अशांति और निराशा के भयावह एवं करूण दृश्य दिखाई पड़ने लगे थे। चारों ओर वे वातावरण में अनाचार और व्याभिचार की गूंज सर्वत्र सुनाई देती थी। सबसे भयंकर आघात लगा था हिंदू धर्म को। दिल्ली के साम्राज्य का गौरव नष्ट हो गया था और वह सिर्फ प्रांतीय राजधानी रह गई थी। ऐसी दुर्दशा के समय दिल्ली शासक लोदी वंश के हाथों में चला गया था। सिंकदर लोदी का

धार्मिक उन्माद इतना प्रबल था कि वह एक दिन में पंद्रह सौ हिंदुओं को तलवार के घाट उतारने में नहीं हिचकता। टाइटस ने इंडियन इस्लाम में इस तथ्य का उल्लेख किया है। कबीर को कुप का अपराधी सिद्ध करके दंड दिलाने का प्रयत्न काजियों ने ही किया था। कबीर की वाणी में राजनीतिक अशांति की झलकियां बहुत उभरे हुए रूप में दृष्टिगत होती है। उन्होंने लिखा भी है–

'बुरौ दिवान दाहि नहि लागे,

इक–बांधे एक मारैं।

तत्कालीन शासकों की ऐश्वर्य लिप्सा से प्रेरित राजनीति पर कबीर ने तीक्ष्ण प्रहार किया है।

"कबीर नौबत आपणी नौ दिन लेहु बजाय

ऐ पुर पट्टन ऐ गली बहुरि न देखे आय।।"

सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियां

कबीर के समय सर्वाधिक उथल–पुथल सामाजिक जीवन में व्याप्त थी। वर्ण व्यवस्था और आश्रम धर्म के आधार पर संघठित ब्राह्मण समाज व्यवस्था का ढांचा लड़खड़ा गया था। मुसलमानों के आगमन से वर्णव्यवस्था को प्रबल चुनौती मिली थी। मुसलमानों में मजहबी जोश और कटटर भ्रातृ भावना थी। हिंदू कटटरता से पीड़ित तथा उपेक्षित निम्न वर्ग इस्लाम में धर्मातरित हो रहा था। भय और प्रलोभन दोनों के कारण सामूहिक धर्म परिवर्तन हो रहा था। हिंदुओं में अनेक जातियां और उपजातियां बन चुकी थी। इन्हीं की देखा–देखी मुस्लमानों में भी बाहर से आए सैय्यदों, पठानों, और धर्मातरित मुसलमानों में भेदभाव घर कर गया था। धार्मिक बाहाचार और आडंबर हिंदू–मुस्लिम दोनों में बढ़ रहा था। मुसलमान बने हिंदुओं की स्थिति विचित्र थी। इनकी निष्ठा न वर्ण व्यवस्था में थी न ही मुसलमानों के धर्माचार में। समाज में स्त्रियों की दशा सबसे दयनीय थी। सामन्तों, सुल्तानों के लिए वे खडग की चेरी और विलासिता की वस्तु थी। पंडितों के लिए धर्मांतरित संस्कारहीन होने के कारण वे शूद्रवत थी। संतो के लिए साक्षात माया मूर्ति। भक्त लोग उनके सती रूप की प्रशंसा करते और दरबारी कवि उनके रानी रूप की। सामान्य नारी की नई सामाजिक मर्यादा नहीं थी।

ऐसे वातावरण में सामान्य जनता की आर्थिक स्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती। इस दौर में भारत में आने वाले विदेशी यात्रियों मार्कोपालों, इब्नबतूता ने इसकी समृद्धि का उल्लेख किया है। लेकिन यह समृद्धि सुल्तान, उनके सामंतों व पदाधिकारियों तक ही सीमित थी। उच्च व्यापारी और साहूकार सम्पन्न थे। किसानों के पास उपज का एक तिहाई भाग भी नहीं बच पाता था।

शेष सारा धन शासकों की विलासिता पर खर्च होता था। प्राकृतिक आपतियों के कारण जब अकाल और दुर्भिक्ष पड़ता तो हजारों लोग काल कवलित हो जाते थे। जागीरदारों ने उद्योग धंधों पर नियंत्रण किया हुआ था। वे किसानों और शिल्पियों का शोषण करते थे। आर्थिक वैषम्य के कारणों में वर्ण और धर्म का भेद तथा समान अवसर का अभाव प्रमुख था। पूंजीवाद और शोषण का बोलबाला तभी से था। मध्यकालीन आर्थिक ढांचा शोषण के तत्वों से इस प्रकार जकड़ा हुआ था कि प्रजा उसमें बंधकर छटपटाती थी।

कबीर कालीन समाज का आर्थिक ढांचा अत्यंत जटिल था। अमीर खुसरों ने लिखा था, ''शासकों के मुकुट का हर मोती किसानों, मजदूरों के रक्त बिंदु से बना था।''

धार्मिक परिस्थितियां

मध्यकाल में धर्म का संबंध राजनीतिक से तो था ही, अर्थव्यवसायिक से भी जुड़ा था। मध्यकालीन कर्मकाण्डों के

पीछे मुल्लों और पंड़ों का व्यवसाय ही था। इसीलिए पाखंडियों और कर्मकांडियों का धंधा जोरों पर था। कृषि, व्यवसाय और जीवन के अन्य व्यावहारिक कार्यों के पीछे धर्म और अर्थ कहीं न कहीं जुड़ा था। धर्म के ठेकेदार अपनी खास संपति बनाए हुए थे। जिससे सामान्य जनता का शोषण हो रहा था। इस्लाम राजधर्म था। अतः मौलवियों को राज्य से आर्थिक सहायता मिलती थी। धर्म के नाम पर भी जनता को आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था।

कबीर के समय तक अनेक मत—मतांतर भारत भूमि में प्रचलित हो चुके थे। उस समय के प्रमुख धार्मिक संप्रदायों का संबंध इनसे था बौद्ध धर्म, जैन धर्म, स्मार्त, वैष्णव, शाक्त मत, सिद्धी नाथपंथ और इस्लाम।

वैदिक धर्म की रूढियों की प्रतिक्रिया में बौद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ थ्इा। वे रूढ़ियां थी— यज्ञ, कर्मकांड, जातिवाद, पुरोहितवाद आदि। बौद्ध धर्म का मध्यम मार्ग महायान शाखा से अधिक उदार होकर लोकजीविता को आत्मसात करने लग गया। महायान के शून्य के आधार पर सिद्धों ने अपने सहज संप्रदाय की नींव डाली। लोकमर्यादा, पाखण्ड, ... और पुस्तकीय ज्ञान के प्रति विद्रोह की जो ज्वाला घुट रही थी वह इन सिद्धों की वाणी में धधक कर बाहर निकली। सिद्धवाणी ऐसा आंदोलन था जो धार्मिक ठेकेदारों के निहित स्वार्थों के प्रति विद्रोह था। तंत्रों की गुह्य साधनाओं को अनेक मतो में श्रय मिला। सिद्धों की साधनात्मक विकृतियों में सहज यह आदोलन भ्रष्ट हो गया। बौद्ध धर्म के विकारों की छाया से हिंदू धर्म की एकता खंडित हो गई। शंकर का मायावाद शून्यवाद को चुनौती था।

सिद्ध सम्प्रदाय अपनी कुछ विशेषताएं नाथ संप्रदाय को दे गया उनमें प्रमुख है। विद्रोहात्मक वृति, दमन मार्ग का त्याग, पुस्तक ज्ञान का विरोध ब्राह्माचार का बहिष्कार, कर्मकांड का विरोध, तीर्थ, व्रतादि की निंदा, गुरू महिमा की स्थापना, योगामार्ग की प्रतिष्ठा लोक भाषा में प्रतीकों की स्थापना आदि। कबीर वाणी में इनकी सारी शब्दावली मिलती है।

कबीर के समय से बहुत पहले जैन धर्म तांत्रिक प्रभाव ग्रहण कर चुका था। जैन धर्मावलंबी आचार क्षेत्र में मंत्र, यंत्र, मुद्रा, कुंडलिनी योग, मंदिर, मूर्ति, चर्चा, उत्सव आदि को तांत्रिक की भांति मान्यता देते थे। परन्तु जैनों के धार्मिक सौहार्द और अहिंसावाद का प्रभाव भी कबीर वाणी पर पड़ा है।

शंकराचार्य के दार्शनिक मार्ग को वेदांत और साधना के अंश को स्मार्त मार्ग कहा गया है।

इसमें वेदशास्त्र द्वारा प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्म के पालन द्वारा आत्मशुद्धि पर बल दिया गया है। कबीर इस वर्णाश्रम धर्म के आग्रह से खिन्न थे। कुमरिल भटट ने यज्ञों के कर्मकाण्ड के प्रति विश्वास करने की कोशिश की। ये अनुष्ठान व्यय साध्य थे। कबीर इसके विरोधी थे, क्योंकि यह बाह्यचार था और विषमता की भूमि पर प्रतिष्ठित था।

कबीर के समय गोरखनाथ के नाथयोगी संप्रदाय का बहुत प्रचार था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''गोरखनाथ ने शैव प्रत्यभिज्ञादर्शन के सिद्धांतों के आधार पर माया योग के साधनों को व्यवस्थित किया तथा आत्मानुभूति और शैव परम्परा के सामंजस्य के चक्रों की संख्या नियत की।'' उनका मत था कि शरीर और मन की शुद्धि तथा आत्मज्ञान के लिए चित्तवृति निरोध आवश्यक है। नाथ संप्रदाय समन्यवादी, निर्गुण ब्रह्मवादी और हठीयोगी साधक पंथ था। इसमें जैन मत की सहिष्णुता सदाचार, बौद्ध—सिद्धों की कठोर आलोचना वृति का मिलन था। नाथ पंथ का विरोध जातिगत भेदभाव, प्रपंच व पाखंड़ों से अधिक प्रखर था। कबीर वाणी पर इसका अधिक प्रभाव है। कबीर के समय तक शैवमत—कश्मीरी शैवमत से प्रत्याभिज्ञा और उससे कापालिक मत विकसित हुए। शंकराचार्य के अद्वैतवाद से शैवमत की प्रतिष्ठा बढ़ी। प्रत्याभिज्ञा में शक्ति को परम शिव की अभिव्यक्ति माना गया। इन्होंने ही शाक्त दर्शन के विकास में योग दिया। जीवात्मा समभाव से परमशिव की अभिव्यक्ति है और माया द्वारा सीमित। कबीर के आध्यात्मिक सिद्धांतों पर इनका प्रभाव है। दक्षिण का लिंगायत वस्तुतः शैवों का सुधारवादी दल

था जिसने तत्कालीन शैवमत के आंडम्बरों कुरीतियों और ब्राह्मणवाद के विरोध में आवाज बुलंद की। इंद्रिय दमन का विरोध, ज्ञान और भक्ति से मुक्ति सामाजिक भेदभाव और वामाचार विरोध आदि बातें कबीर वाणी में स्पष्ट दिखाई देती है।

निष्कर्ष

भारतीय इतिहास में यह पहला अवसर था कि इस्लाम भारत के धर्म, भाषा, साहित्य और संस्कृति में समझौता नहीं कर सका। उन्हें मूर्ति पूजा से भयंकर घृणा थी और मूर्ति भंजन को वे गौरव और भाग्य समझते थे। वे समन्वय विरोधी थे। इस्लाम में अपूर्व जीवनी शक्ति थी और हिंदू धर्म में क्षीणता आ गई थी। धर्म के लोकहितकारी क्रियात्मक रूप को ओझल कर हिंदू धर्मायार्थ या तो गुह्य साधनों में तत्पर थे या ज्ञान मोक्ष प्राप्त करने और भक्ति द्वारा भगवान को रिझाने में लीन थे। जो मुस्लिम पीर, औलियां आदि भारत के कुछ क्षेत्रों में इस्लाम का प्रचार करने में तत्पर थे उनमें सुफी प्रमुख थे। सूफी साधना का समन्वयवाद कबीर की साधना पद्धति में मिल जाता है। देश में इस्लाम के जम जाने पर यह आवश्यक हो गया था कि कटटरता के विसर्जन के साथ एक ऐसा धर्म बने जो हिंदू, मुसलमान, बौद्ध और जैन सभी को अपना सके। कबीर का स्थान उन महात्माओं में आता है। जिन्होंने जाति भेद का विरोध करते हुए यह प्रतिपादित किया कि भगवान की दृष्टि में कोई ऊँच–नीच नहीं है। अपने गुण, कर्म सदाचार और भक्ति द्वारा कोई भी परम पद पा सकता है। इसके लिए आवश्यक है अनन्थ प्रेम। उन्होंने ऐसी भक्ति का झंडा ऊँचा किया जिसमें हर जाति वर्ग और धर्म के व्यक्ति को शरण मिल सकती थी। कबीर के आविर्भाव से सहज मानवता धर्म की प्रतिष्ठा की आवश्यकता की पूर्ति हुई।

मुसलमानों के अंधानुकरण पर भी प्रहार करते हुए वे कहते हैं कि

कांकर–पांथर जोरि के मस्जिद लई चुनाय।
तां चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय।।

कबीर अपने समय के क्रांतिकारी प्रवक्ता थे। उन्होंने आडम्बरों, कुरीतियों, जड़ता, मूढता एवं अंधविश्वासों का तर्कपूर्ण खण्डन किया। कबीर का अपने युग के प्रति यथार्थ बोध इतना था कि उन्होंने हर एक परम्परा, रूढ़ि, कुरीति तथा पांखड को यथार्थ के धरातल पर खारिज किया। अबुल फजल ने आइने अकबरी में लिखा है कि – ''कबीर ने समाज के सड़े–गले रीति–रिवाजों को नकार दिया। कबीर ने समाज सुधार के लिए कोड़े खाए तो व्यंग्य और हंसी–ठिठोली द्वारा भी जनमानस में सुधार के प्रति सोच विकसित की। उन्होंने आलोचना के साथ सृजन की रूपरेखा रखी। कबीर अराजकता, सामंतवाद तथा उथल–पुथल के दौर में क्रांतिकारी स्वप्नकार है। वे स्वभाव से संत थे, लेकिन प्रकृति से उपदेशक। उन्होंने अंधविश्वासों का उपहास कर ठीक निशाने पर चोट पहुंचाई। उन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, अवतारवाद एवं कर्मकाण्ड़ों का विरोध किया तथा ईश्वर और व्यक्ति के बीच किसी भी मध्यस्थ को अस्वीकार किया। उन्होनें हर रूढिता को खारिज किया जो मानव–मानव में भेद कराती थी। आज के दौर में जब भौतिक साधनों हेतु, भ्रष्टाचार लूट–खसौट, मिलावटखोरी जैसे अपराध मानवता को झकझोर रहे हैं तब कबीर के विचार अति प्रासंगिक हैं।

6. कबीर का जीवन वृत्त

अनेक पुस्तकों में, अनेक विद्वानों ने कबीर के विषय मे अपने–अपने अनेक मत प्रस्तुत किये हैं। परन्तु कबीर के जन्म तथा मृत्यु के वर्ष के सम्बन्ध मे कुछ निश्चित रूप से नहीं कह पाये हैं तथा न ही कोई ठोस प्रमाण दे सके हैं। कुछ विद्वानों ने कबीर के ग्रन्थों मे लिखे हुए पदों के आधार पर अनुमान लगाकर उनके जन्म का समय 1453 बताया है।

चौदह सो पचपन साल गये,
चन्द्रवार इक ठाठ ठए।
जेठ सुदी वरसायत की
पूरनमासी तिथि प्रगट भये।
घन गरजे दामिनी दमके
बूंदे बरसे झर लग गये।
लहर तालाब में कमल खिले,
तहँ कबीर भानु प्रगट भये।।

इस प्रकार इस पद के आधार पर ही विद्वानों ने कबीर के जन्म का समय स्वीकार किया है तथा इस पद को ही वे जन्म समय का आधार मानते हैं।

कबीर साहब का जीवन–काल निश्चित करने की चेष्ठा प्रायः गत सौ वर्षो से निरन्तर होती चली आ रही है। इस विषय के जो कुछ भी साधन अभी तक उपलब्ध हैं, उनकी छानबीन आज तक भी होती जा रही है। कबीर साहब का जीवन–काल निश्चित करते समय कभी–2 कुछ ऐसी पंक्तियाँ भी उद्धृत की जाती हैं जो उसके लिए प्रमाण स्वरूप समझी जाती हैं। किन्तु उन्हें आधार की भांति स्वीकार करते समय उनके भी मूल का पता नहीं लगाया जाता, अपितु उन्हें केवल बहुत दिनों से प्रचलित रही आई ही मान कर उनमें से किसी न किसी को प्रवृत्ति के अनुसार चुन लिया जाता है और उसके द्वारा अपने मत की पुष्टि कर दी जाती है। कबीर पंथी साहित्य में कबीर साहब के प्रकट होने के प्रसंग में उल्लिखित पायी जाती हैं। ये सभी पंक्तियाँ बहुधा भिन्न–भिन्न तथा परस्पर–विरोधी मत प्रकट करती हैं।

डॉ0 पारसनाथ तिवारी ने चंद्रवार को दिन का सूचक न मानकर स्थान का सूचक माना है। इसका उल्लेख 'निर्भय ज्ञान' में मिलता है। डॉ0 श्यामसुंदर दास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा डॉ0 पारसनाथ तिवारी ने संवत् 1456 ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को कबीर की जन्त तिथि स्वीकार किया है।

जन्म स्थान एवं बाल्यावस्था

कबीर के जन्मस्थान के बारे में भी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। एक जनश्रुति के अनुसार कबीर का जन्म काशी की एक विधवा ब्राह्मणी से हुआ जो लोक–लाज के डर के कारण शिशु कबीर को लहरतारा तालाब की

सीढ़ियों पर छोड़कर चली गई। नीरू तथा नीमा जुलाहा दंपत्ति को यह बालक वहाँ से प्राप्त हुआ और उन्होंने ही उसे पाल–पोस कर बड़ा किया। फिर भी वह सरोवर कहां है? इसके बारे में कुछ निर्णय नहीं हो सका। श्री गुरू ग्रंथ साहब, राग रामकली, पद 3 के अनुसार कबीर का जन्म मगहर में हुआ लेकिन इसी ग्रंथ के राम गौड़ी के 15वें पद में लिखा है कि कबीर साहब ने समूचा जीवन शिवपुरी काशी में व्यतीत किया तथा मरते समय वे मगहर पहुंच गए।

'सगल जनम सिवपुरी गंवाइआ।

म्रती बार मगहर उठि आइ आ।।'

इस मत के विपरीत डॉ0 सुभद्र झा ने कबीर साहब को मिथिला में उत्पन्न स्वीकार किया है। उधर बनारस गजेटियर के अनुसार कबीर का जन्म आजमगढ़ जिले के बलहरा गाँव में हुआ था। चंद्रवली पांडेय के अनुसार बलहारा गाँव का बलहरा पोखर ही वह तालाब है जहां विधवा ब्राह्मणी ने नवजात शिशु का त्याग किया था। परन्तु कबीर–पंथी काशी के पास स्थित लहरतारा तालाब को कबीर जी का जन्म स्थान मानते हैं। फिर भी डॉ0 पारसनाथ तिवारी द्वारा चंद्रवार को कबीर साहब का जन्म–स्थान मानना कुछ–कुछ ठीक लगता है। फिर भी चंद्रवार स्थान कहाँ है, इसके बारे में कोई भी सही निर्णय कबीर साहब की बाल्यावस्था के बारे में अनेक प्रकार की किवदतिया प्रचलित हैं। कहते हैं कि उन्हें भूख नहीं लगती थी। माता–पिता को चिंतित देख कबीर ने दूध–पानी स्वीकार किया। परन्तु यह दूध एक अनब्याही बछिया का था। नीरू और नीमा ने बचपन से कबीर को बुनकरी का कार्य सिखा दिया था। परन्तु वे उसे त्यागकर प्रभु भक्ति में लीन हो गए। लिखा भी है–

तननां बुननां तज्यौ कबीर। रामं नामं लिखि लियौ सरीर

तुसि–मुसि रोवै कबीर की माई। यह बारिक कैसे जीवै खुदाई

जब लगि तागा बाहौं बेही। तब लगि बिसरै राम सनेही

कहत कबीर सुनहु मेरी भाई। पूरन हारा त्रिभुवन दाई।।

गुरू दीक्षा की समस्या

प्रायः यह धारणा है कि स्वामी रामानंद ही कबीर के गुरू थे। इस धारणा के समर्थन में निम्नलिखित पंक्ति उद्धृत की जाती है।

'काशी में हम प्रकट भए हैं, रामानंद चेताए'

परन्तु यह वाक्य कबीर साहब का स्वयं रचित वाक्य नहीं है। गुरू ग्रंथ साहिब में भी इसका उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी विद्वानों का एक वर्ग यह स्वीकार करता है कि रामानंद ही कबीर के गुरू थे। इस संबंध में डॉ0 श्यामसुंदर दास कहते है– "हो सकता है बाल्यकाल में बार–बार रामानंद के साक्षात्कार तथा उपदेश श्रवव से या दूसरों के मुख से उनके गुण या उपदेश सुनने से बालक कबीर के चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ा हो। और आगे चलकर उन्होंने उन्हें गुरू मान लिया हो।" इस संबंध में एक जनश्रुति यह भी मिलती है कि मुसलमान परिवार में पलने का कारण काशी के ब्राह्मणों ने आपत्ति की क्योंकि वे वैष्णव यथाचित आचार व्यवहार कर रहे थे। उन्होंने कहा भी कि निगुरे वैष्णव को मुक्ति नहीं मिलती। अतः कबीर साहब ने एक युक्ति से स्वयं को स्वामी रामानंद जी के गुरू मंत्र से दीक्षित कर लिया। रामानंद पंचगंगा घाट पर प्रतिदिन ब्रह्म मुहूर्त में स्नान करने जाते थे। कबीर साहब उसी घाट की सीढ़ियों पर लेट गए।

अंधकार के कारण स्वामी जी का पैर कबीर के सिर पर लगा तथा खेद रूप में उनके मुख से राम–राम

निकला। कबीर साहब ने इसी राम–नाम को गुरू दीक्षा के रूप में स्वीकार कर लिया तथा स्वामी रामानंद को अपना गुरू घोषित किया। परन्तु यह घटना जनश्रुति पर आधारित है, प्रमाणिक नहीं।

मुस्लिम कबीर पंथियों में यह विश्वास है कि कबीर के गुरू का नाम शेख तकी था परन्तु इस विचार को भी स्वीकार करने में कठिनाई हे। कबीर साहब ने अपने गुरू को बनारस का निवासी बताया है जबकि शेख तकी झांसी के निवासी थे, बल्कि एक स्थल पर तो कबीर शेख तकी को भी उपदेश देते दिखाई देते हैं।

पारिवारिक जीवन

ऐसा बताया जाता है कि कबीर साहब विवाहित थे। उनकी पत्नी का नाम लोई था। ऐसी जनश्रुति थी लोई एक बनखंडी बैरागी की पोषित कन्या थी। जब वह वैरागी स्नान के लिए गया तो उसने एक लोई में एक शिशु कन्या को बैठे देखा। लोई में लिपटी होने के कारण इसका नाम लोई पड़ा। कालांतर में इसी युवती से कबीर का विवाह हुआ। परन्तु कुछ विद्वानों का विचार है कि लोई उनकी पत्नी न होकर उनकी शिष्या थी जो आजन्म उनके साथ रही। लोई से कबीर को कमान तथा कमाली नाम के पुत्र–पुत्री प्राप्त हुए। कबीर ने लोई को संबोधित कर अनेक पद भी लिखे हैं। परन्तु कुछ लोग लोई का अर्थ लोक लगाते हैं। परन्तु एक पद में कबीर तथा लोई का एक घर होना कहा गया है।

रे यामैं क्या मेरा तेरा, लाज न मरहिं कहत घर मेरा

कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम तुम विनति रहे गोंसाई।।

इस प्रकार से कबीर साहब के जीवन से अनेक काल्पनिक घटनाएँ जुड़ी हुई हैं। कबीर के भक्तों ने अतिरंजित शैली में इन घटनाओं का वर्णन किया है। कहते हैं कि सिकंदर लोदी की आज्ञा पर कबीर को बेड़ियों में जकड़कर नदी में फेंक दिया गया था, लेकिन वे जंजीरों से मुक्त हो तैरते हुए नदी के किनारे पर आ गए। इसी प्रकार से कबीर को जलते हुए अग्निकुंड में भी जलाने का प्रयास किया गया तथा एक मस्त हाथी के पैरों से भी कुचलवाने की कोशिश की गई।

इन सब घटनाओं का उल्लेख कबीर के पदों में मिलता है यहाँ तक कि 'भक्त–माल' के टीकारकार प्रियादास तथा दादू के शिष्य रज्जबदास ने भी इन घटनाओं की चर्चा की है।

जाति और धर्म

कबीर साहब की जाति तथा धर्म को लेकर भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। यह निर्णय करना बड़ा कठिन हे कि वे मुस्लिम थे या हिंदू। कुछ लोग उन्हें बौद्ध मतावलंबी भी कहते है परन्तु कबीर ने अपनी रचनाओं में स्वयं को बड़े गर्व से जुलाहा घोषित किया है लेकिन एक स्थल पर वे स्वयं को कोरी भी कहते हैं। नीचे लिखे पदों से पता चलता है कि वे जाति से जुलाहा थे–

क. तूं बाम्हन मैं किसी का जुलाहा।

ख. हरि के नाउ बिन किन गति पाई।

कहै जुलाह कबीर

ग. जैसे जल जलही दुरि मिलयौ।

त्यौं दुरि मिला जुलाहा।।

उपर्युक्त सभी पंक्तियां कबीर की प्रमाणिक पंक्तियां हैं। गुरू अनंतदास, रज्जबदास आदि ने भी कबीर को जुलाहा ही घोषित किया है। यही नहीं कबीर साहब की रचनाओं में अनेक स्थलों पर मुस्लिम संस्कारों को भी वर्णन

हुआ है। परन्तु ऐसे स्थानों की भी कमी नहीं जहाँ हिंदू संस्कारों का वर्णन हुआ है। अतः इस प्रकार के वर्णन से यह सिद्ध करना कठिन है कि कबीर साहब मुसलमान थे। उधर आचार्य क्षितिजमोहन सेन और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर साहब को योगियों के ऐसे वर्ग से जोड़ते हैं जिसने थोड़े समय पूर्व मुस्लिम वर्ग को गहण किया था। फलतः उनके परिवर में हिंदू–मुस्लिम दोनों वर्गों के रीति–रिवाजों का पालन होगा। इस संदर्भ में डॉ0 पारसनाथ तिवारी ने लिखा भी है– "वस्तुतः भारत तथा अरब का संबंध बहुत पुराना है, अतः भारत में मुस्लिमों के आगमन से पूर्व ही दोनों देशों की विचारधाराएँ एक–दूसरे को प्रभावित करती रही। मुसलमानों के आगमन के पश्चात् तो विचारधाराओं का और भी आदान–प्रदान हुआ जिससे दोनों संस्कृतियों की समान मान्यताओं का उल्लेख हिंदू–मुस्लिम दोनों प्रकार के रचनाकारों में समान रूप से मिल सकता है। अतः इस तर्क के आधार पर किसी कवि की जाति का निर्णय करना समीचीन नहीं कहा जा सकता।"

परन्तु डॉ0 बड़थ्वाल कबीर को योगियों का अनुयायी कहते हैं। वे लिखते हैं– "मेरी समझ में कबीर भी किसी प्राचीनतम कोरी किंतु जुलाहा कुल के थे जो मुसलमान होने से पहले योगियों का अनुयायी था।" डॉ0 विद्यापती मालविका ने कबीर साहब को कोली राजपूतों का वंशज स्वीकार किया है। उनका कहना है कि इस जाति का मुख्य व्यवसाय कृषि करना तथा वस्त्र बुनना था। मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व ये कोहली राजपूत बौद्ध बन गए थे। लेकिन बाद में इन्होंने मुस्लिम धर्म को अपना लिया। डॉ0 विद्यापति मानती हैं कि कबीर इसी कोहली या कोरी जाति से संबंधित थे। यही कारण है कि कबीर की रचनाओं में हिंदू और मुस्लिम धर्मों की विचारधारा के अनेक तत्व देखे जा सकते है फिर भी कबीर की जाति तथा धर्म के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

देशाटन – कबीर साहब को तीर्थयात्रा से कोई लगाव नहीं था बल्कि उन्होंने तो तीर्थव्रत आदि का जोरदार खंडन किया है। फिर भी संत महात्माओं से मिलने तथा ज्ञानार्जन की उन्हें तीव्र इच्छा थी। भले ही उन्होंने जीवन का अधिकांश भाग काशी में व्यतीत किया हो। परन्तु फिर भी वे समय–समय पर देशाटन करते रहे। कबीर के काव्य से पता चलता है कि वे अपनी परिस्थितियों से तंग आ चुके थे तथा वैरागी होकर वन–वन भटकते रहे लेकिन वहाँ भी उन्हें शांति ना मिली। अतः पुनः घर लौट कर वैरागी का जीवन व्यतीत करने लगे। उनकी साखियों द्वारा पता चलता है कि सिंकदर लोदी द्वारा निष्कासित होने पर कबीर साहब काफी समय तक इधर–उधर घूमत रहे तथा बाद में मगहर चले गए। इसी प्रकार मगहर जाने तथा वहीं पर प्राण त्यागने की बात भी लोक प्रसिद्ध है। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि वे 'मानिकपुर बड़े' तथा झूसी में गए थे। कबीर की उक्तियों से पता चलता है कि वे गोमती नदी के किनारे पर रहने वाले पीतांबर पीर से भी मिलने जाते थे। इसी प्रकार कवि मंडौल, अंडरपुर, जगन्नाथपुरी आदि स्थानों पर भी गए थे। ऐसा कुछ विद्वानों का विचार है– कबीर ग्रंथावली की एकाध पंक्ति के आधार पर उनका मक्का–दीना जाने का भी अनुमान लगाया जाता है। परन्तु यह सही प्रतीत नहीं होता। फिर भी इतना निश्चित है कि कबीर साहब एक ऐसे संत कवि थे जिन्होंने भारत के कुछ भागों में निश्चय से देशाटन किया होगा।

मृत्यु

कबीर साहब के जन्म के समान उनके निधन की तिथि को लेकर भी विद्वानों में काफी मत भेद है। किसी एक तिथि पर ये विद्वान एकमत नहीं हैं। कबीरपंथी साहित्य में कबीर की मृत्यु संवत् के बारे में तीन दोहे उपलब्ध होते हैं–

'संवत पंद्रह सौर पचहत्तरा, किया मगहर को गौन

माद्य सुदी एकादसी, रलो पौन में पौन'

पंद्रह सौ उन्यास में, मगहर कीन्हौं गौन

अगह सुदि एकादसी, मिल्यों पौन में पौन

संवत पंद्रह सौ उनहतरा रहाई

सतगुरू चले उड़ि हंसा ज्याई।।

उपर्युक्त दोहों से कोई भी दोहा प्रमाणिक नहीं कहा जा सकता प्रथम दोहे के तीसरे–चरण में माघ सुदी एकादसी के स्थान पर कहीं–2 अगतन सुदी एकदासी का पाठ भी मिलता है। पुनः जिन रचनाओं से ये दोहे उद्धृत हैं, वे सभी मौखिक परंपरा से प्रचलित हैं। डॉ0 परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर साहब के निधन काल का निर्णय करते समय सं0 1552 और 16वीं शताब्दी के प्रथम चरण को विवेच्य काल माना है।

उधर कबीर पंथी कबीर साहब की आयु 120 वर्ष मानते हैं। तदनुसार कबीर का निधन काल सं0 1575 होना चाहिए। अधिकांश विद्वानों ने इसी तिथ को सही मान लिया है। यदि हम सं0 1575 की तिथि को स्वीकार कर लेते हैं तो सिंकदर लोदी, गुरूनानक देव तथा रामानंद से कबीर साहब की समकालीनता सही बैठ जाती है। उधर आचार्य क्षितिजमोहन सेन, डॉ0 पीतांबरदत्त बड़थ्वाल तथा आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने संवत् 1505 को कबीर की निधन तिथि स्वीकार किया है। परन्तु यदि हम निधन तिथि 1505 तथा जन्म तिथि 1455 मान लेते हैं तो कबीर साहब की आयु केवल 25 वर्षों की सिद्ध होती है। उधर कबीर साहब के जो चित्र प्राप्त हुए है वे 25 वर्ष की आयु से अधिक काल के लगते हैं। ऐसी स्थिति में जो चित्र प्राप्त हुए हैं वे 50 वर्ष की आयु से अधिक काल के लगते हैं। ऐसी स्थिति में संवत् 1505 को कबीर साहब का निधन काल मानना समीचीन प्रतीत नहीं होता। धर्मदास द्वारा रचित द्वादश पंथ के आधार पर डॉ0 माताप्रसाद गुप्त ने संवत् 1569 को कबीर साहब की निर्वाण तिथि स्वीकार किया है। द्वादश पंथ का दोहा इस प्रकार से है–

'सुमंत पन्द्रह सौ उन्हत्तरा हाई। सतगुरू चले उठ हंसा ज्याई।।"

लेकिन यह छंद भी प्रामाणिक नहीं है। 'उठ हंसा ज्याई' के पाठ भेद भी मिल जाते हैं अतः संवत् 1575 को ही कबीर साहब की निधन तिथि स्वीकार करना चाहिए।

अंतिम संस्कार

कबीर साहब के मृत्यु संस्कार को लेकर भी विद्वानों में काफी विवाद चलता रहा है। कबीर की अंत्येष्टि क्रिया को लेकर भी विद्वानों में एक बहुत विचित्र विवाह आज तक प्रचलित है। डॉ0 श्यामसुंदरदास इस संबंध में लिखते हैं–

कहते हैं कि हिंदू उनके शव का अग्नि संस्कार करना चाहते थे और मुसलमान उसे कब्र में गाड़ना चाहते थे। झगड़ा यहाँ तक बढ़ा कि तलवारें चलने की नौबत आ गई; हिंदू–मुस्लिम ऐक्य के प्रयासी कबीर की आत्मा यह बात कब सहन कर सकती थी। उस आत्मा ने आकाशवाणी की 'लड़ो मत। कफन उठाकर देखो।' लोगों ने कफन उठाकर देखा तो शव के स्थान पर एक पुष्पराशि पाई गई, जिसको हिंदू–मुसलमान दोनों के आधा–आधा बांट लिया। अपने हिस्से के फूलों के ऊपर मुसलमानों ने मगहर में ही कब्र बनाई।"

कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि कबीर की कब्र मगहर में नहीं है, बल्कि अयोध्या के समीप रतनपुर में बनाई गई थी। धर्मदास ने भी इसी का समर्थन किया है। उधर मौलवी शेर अली अफसोस, आईने अकबरी आदि द्वारा भी इस बात की पुष्टि होती है। परन्तु डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्वीकार किया कि जुग्गी जाति की परम्परानुसार कबीर का शव पहले जलाया गया फिर समाधि बनाई गई। परन्तु ये मत भी विवादास्पद है।

7. कबीर का कृतित्व

कबीर साहब के नाम से प्रचलित विभिन्न कृतियों की संख्या बहुत बड़ी है। उनमें से अनेक प्रकाशित हो भी चुकी है। कबीर–पन्थ के कतिपय अनुयायियों का विश्वास है कि 'सद्गुरु' की वाणियों का कहीं अन्त नही है। जिससे उनकी कोई संख्या निर्धारित करने में वे स्वभावतः असमर्थ हैं। किन्तु जो लोग ऐसा नही समझते उन्होंने इनकी कई सूचियाँ प्रस्तुत की हैं और कुछ ने वास्तविक संख्या पर भी विचार किया है।

कबीर साहब की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी। उन दिनों उत्त्र के हठयोगियों और दक्षिण के भक्तों में मौलिक अन्तर था। एक टूट जाता था पर झूकता न था, दूसरा झूक जाता था पर टूटता न था। कबीर का घर–फूँक मस्ती, फक्कड़ाना लापरवाही और निर्मम अक्खड़ता उनके अखण्ड आत्मविश्वास का परिणाम थी।

कबीर साहब भक्तिकाल के सर्वाधिक निर्गुण संतकवि है। वे एक सच्चे समाज सुधारक, क्रांति युग द्रष्टा, सफल साधक तथा महान विचारक थे। उनका समस्त साहित्य विचारों की भव्यता एवं गंभीरता के कारण जन–मन के हदय को छू लेता है। भले ही वे अशिक्षित रहे हो, लेकिन उनका काव्यरूप अनपदों जैसा लगता नहीं। वे निश्चय बहुलुत थे। उन्होंने सांसारिक और आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान करने के लिए विभिन्न काव्य रूपों का आरश्र लिया। उल्लेखनीय बात तो यह है कि उन्होंने तत्विक विचारों को विभिन्न पद्यों के द्वारा बड़ी संयमता से प्रकट कर दिया।

तुम्ह जिन जानों गीत है यहु निज ब्रह्म विचार।

केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे।।

कबीर साहब ने निश्चित उद्देश्य से ही काव्य रचना की है। वे संसार रूपी सागर में फंसे हुए जीव को अपने उपदेशों के द्वार पार उतारना चाहते हैं। मानों परमात्मा ने कवि को प्ररेणा दी कि वह साखी लिखे।

हरि जी यहै विचारिया साखी कहौ कबीर

भौ सागर मे जीव है जै कोई पकड़ै तीर

कबीर साहब अशिक्षित थे। उन्होंने स्वयं अपनी वाणी को नहीं लिखा। विद्वानों का अनुमान है कि उनके मौखिक उद्देश्यों को शिष्यों ने उनके जीवनकाल या बाद में लिपिबद्ध किया होगा। ऐसा भी हो सकता है कुछ रचनाएं संतों और लोक गायकों द्वारा गाई जाती रही हो। कबीरपंथी तो सदगुरू की वाणियों का कोई अंत नहीं मानते। उनका कहना है कि संसार के पेड़ों में जितने पते हैं गंगा में जितने बालूकण है उतनी संख्या में उनकी रचनाएं है।

जेते पत्र वनस्पति औ गंगा की रेन।

पंडित विचारा का कहैं, कबीर कही मुख वैन।।

फिर भी विभिन्न विद्वानों ने कबीर की रचना 'बीजक' को ही प्रमाणिक रचना माना है। इसके 3 संग्रह मिलते हैं।

उन्हीं के आधार पर हम प्राप्त होने वाले काव्य रूपों का विवेचन करेंगे।

साखी

साखी शब्द 'साक्षी' से बना है। 'साक्षिन' इसका अपभ्रंश रूप है। इसका अर्थ है– वह व्यक्ति जिसने कोई घटना अपनी आंखों से देखी हो। आरंभ में गुरूजनों को ही साक्षी कहा जाता था क्योंकि वे सांसारिक, नैतिक और आध्यात्मिक समस्याओं को जानते थे। बाद में गुरू जनों के वचनों को ही 'साक्षी' कहा जाने लगा। सिद्ध और नाथ योगियों में अक्सर कहा जाता था कि वे साक्षी देकर सिद्ध कर सकते हैं अर्थात अमुक वचन पूर्ववर्ती गुरूजन का है। सिद्ध और संत यह भी जानते थे कि साधारण आदमी इस दशा को नहीं समझ सकता। अतः उन्होंने अपने गुरू का नाम ही साक्षी रूप में लिया।

साक्षी कबीर साहब का उपदेश प्रधान काव्य भी है। नाथ और निर्गुण सम्प्रदाय के संतों की नीति, व्यवहार, ज्ञान तथा वैराग्य आदि के लिए जो कुछ कहा गया, उसे साखी कहा। साखियों में सर्वाधिक प्रयोग दोहा–छंद का है। संतो ने अपने नीति प्रधान उपदेशात्मक दोहों को साखी कहा है। कबीर साहब भी अपने दोहों को साखी कहते हैं। इस संबंध में कबीर साहब जी कहते भी हैं–

हरि जी यहै विचारिया साखी कहौ कबीर।

भौ सागर में जीव है जे कोई पकड़ै तीर।।

साखी रचना की परम्परा का आरंभ गुरू गोरखनाथ के समय में हुआ। उनकी साखी की प्रथम रचना गुरू गोरखनाथ की 'जोगेश्वरी साखी' है। संत नामदेव जी की साखी के नाम से एक नामदेव की भी रचना प्रापत हुई है। कबीर पर गोरखनाथ और नामदेव दोनों का प्रभाव पड़ा। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि कबीर साहब से पहले साखियों की एक दृढ़ परम्परा रही होगी। यही कारण है कि बाद में संतो ने अपने उपदेश प्रधान वचनों को साखी काव्य रूप में कहा।

कबीर वाणी में सर्वाधिक संख्या साखियों की है। हंसदास शास्त्री ने जिस कबीर बीजक का संपादन किया। उसमें 353 साखियां है। 'आदि' ग्रंथ में इनकी संख्या 243 है। लेकिन यहां इनको श्लोक कहा गया है। 'कबीर ग्रंथावली' में 809 साखियां है।

कबीर की साखियां निर्गुण, निराकार ईश्वर की साक्षी के साक्षात्कार से उत्पन्न उन्माद, ज्ञान और अनंत की लहरों में डुबी हुई है। इन्हें पढ़कर ब्रह्म विद्या की प्राप्ति होती है। लोकानुभव पर आधारित साखियां संसार की असारता, मोह माया की मृग भंडार है। कबीर के सिद्धांतों की जानकारी इनसे ही प्राप्त हो जाती है।

साखी आंखी ग्यान की समुझि देखु मन मांहि।

बिन साखी संसार का झगरा छूटत नांहि।।

कबीर ग्रंथावली में साखियों का विभाजन विभिन्न अंगों में किया गया है। अंग का अर्थ प्रकरण या भाग लगाया जा सकता है। इनमें दोहे के अतिरिक्त सोरठा, उपमान, मुक्तामणि, अवतार, दौहकीय, वीरता आदि छंदों का भी प्रयोग है। विषय की दृष्टि से पहले वर्ग की साखियां लौकिक और पारलौकिक भाव प्रधान है। दूसरे वर्ग की साखियों में संत मत का स्वरूप स्पष्ट करने के साथ–साथ पाखंड़ों का विरोध किया गया है। और लोक व्यवहार पर प्रकाश डाला गया है। साखी में वे संत और संत मत के बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं।

निरबैरी निहकामता साई सेती नेह।

विषिया सूं न्यारा रहै को अंग एह।।

कुछ साखियों में कबीर साहब ने परंपरागत रूढ़ियों, अंधविश्वासों, जड़ परम्पराओं और बेकार के रीति–रिवाजों का विरोध किया है। वे हिंदुओं और मुसलमानों दोनों में फैली हुई कुरीतियों पर प्रहार करते हैं। व्यवहार प्रधान साखियों में परनिंदा, असत्य, वासना, धन, लोभ, क्रोध, छल–कपट आदि का निषेध करके सहिष्णुता, दया, अहिंसा, दान, धैर्य, संतोष आदि मीठे वचनों के लिए आग्रह करते हैं, यथा

ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोए।

औरन को सीतल करै आपहु सीतल होय।।

इसी प्रकार से पारलौकिक भाव प्रधान साखियों में उन्होंने आध्यात्मिक विचारों को प्रकट किया है। उस परम शक्ति का साक्षात्कार पाकर वे आनंदित हो उठते है। और उसका स्मरण करते हुए विश्व–कल्याण की कामना करते है। ये साखियां भक्ति भाव, प्रधान, दर्शन तथा रहस्यात्मक है। इनमें नैतिक, आध्यात्मिक, सांसारिक, पारलौकिक आदि विभिन्न विषयों का वर्णन किया गया है।

पद (शब्द) – कबीर के पद गेय है। इनको शब्द भी कहा जाता है। इनके लिए 'वाणी' शब्द का प्रयोग किया गया है। इनका प्रायः गायन किया जाता है। सिद्धों के चर्चापदों में कबीर के पदों का स्वरूप देखा जा सकता है। गोरखनाथ की 'शब्दी' तो कबीर के पदों के अत्याधिक समीप है। 'कबीर ग्रंथावली' और 'आदिग्रंथ' में जो कबीर के पद मिलते है उनका विभाजन रागों में है। परन्तु 'कबीर बीजक' के शब्दों का विभाजन रागों के अनुसार नहीं है। 'सबद' शब्द का ही बिगड़ा रूप है। वेद भी शब्द परक है। और वेद का अर्थ है– ज्ञान। नाथ और संत साहित्य में भी ज्ञान की ही चर्चा है। संत कवि गुरू को ब्रह्म कहते हैं। इसलिए गुरू की वाणी को 'सबदी' कहा गया है। अन्य शब्दों में पद, वाणी शब्द तीनों ही पर्यायवाची है। कबीर वाणी में यह एक काव्य रूप है। इन पदों को दो भागों में बांटा गया है।

1. पहले लौकिक भाव प्रधान पदों में यहाँ एक ओर धार्मिक पांखड़ों का खंडन किया साथ ही यह कहा कि हमें वेद और कुरान के वास्तविक ज्ञान को जानने का प्रयास करना चाहिए।

वेद कितेब कहौ मति झूठा।

झूठा जो न विचारै।।

2. पारलौकिक विषयों से संबंधित पदों में वैराग्य, सिद्धांत निरूपण, विरह मिलन तथा उलटबांसियों आदि का वर्णन है। इन पदों में जहां एक ओर संसार की नश्वरता और सारहीनता का वर्णन है। वहाँ दूसरी ओर प्रभु के नाम स्मरण पर भी बल दिया गया है। सिद्धांत निरूपण संबंधी पदों में साधना और योग की अनेक बातें समाविष्ट है। परन्तु विरह और मिलन के पदों में संत कबीर की भक्ति की प्रगाढ़ता देखी जा सकती है। यहां कवि ने निर्गुण, निराकार ईश्वर के प्रेम को पदों का विषय बनाया है।

अविनाशी पुरूष से विवाह होने के बाद उत्पन्न प्रेम और उल्लास का उदाहरण देखिए–

दुलहिनी गावहु मंगला चार।

हम छरि आए तो राजाराम भरतार।।

इसी प्रकार से विरहानुभूति के भी असंख्य पद देखे जा सकते हैं। जिनमें बिरहिणी आत्मा अपने प्रियतम को पाना चाहती है।

बाल्हा आउ हमारे गेह रे, तुम बिनु दुखिया देह रे।

सबको कहै तुम्हारी नारी, मोको यही अंदेह रे।

एकमेह है सेज न सोवै, तब लगि कैसा नेह रै।

रमैणी

रमैणी भी कबीर साहब का अन्य काव्य रूप है। इसमें चौपाई तथा दोहा छंदों का प्रयोग है। 'कबीर ग्रंथावली' में रमैनियों को विभिनन रागों के अनुसार विभक्त करने का प्रयास किया गया है। रमैणी में कबीर साहब ने सैद्धांतिक चर्चा की है। इसमें वे परम तत्व, राम भक्ति, संसार तथा ब्रह्म के बारे में अपने विचार प्रकट करते हैं। विषय की दृष्टि से रमैणियों के चार भाग है।

1. सृष्टि तत्व और संसार की उत्पति
2. परम तत्व संबंधी
3. राम तत्व संबंधी
4. कर्मकांड संबंधी

बीजक की रमैनियों में सृष्टि के बारे में जो विचार प्रकट किए है (वे प्रायः पौराणिक है।) जीव रूप परमात्मा ने ही अंत ज्योति को प्रकाशित किया है। और उससे इच्छा रूपी नारी को उत्पन्न किए है। इसका नाम गायत्री रखा। ब्रह्म, विष्णु, महेश इसी के बेटे है। इस प्रकार कवि ने 6 दर्शन, 96 पाखण्ड, माया आदि की चर्चा करते हुए सिद्ध, साधक, सन्यासी, सुर, नरमुनि आदि पर भी प्रकाश डाला है। ग्रंथावली की रमैनियों में सृष्टि तत्व के बारे में विस्तृत विवेचन किया गया है। परम तत्व संबंधी रमैनियों में सर्वव्यापक सकातीत ब्रह्म के बारे में विचार प्रकट किए है। जो कि मन और वाणी के लिए अगम और अगोचर है। कबीर जी कहते हैं

जस तू तस तोहि कोइ न जान। लोक कहै सब आनहिं आन

वो है तैसा वोही जाने, ओही आदि नहिं आने।।

कुछ रमैनियों में कबीर साहब ने राम तत्व की व्याख्या की है और यह कहा है कि उसका राम दशरथ का पुत्र नहीं है और वह अवतारों से परे हैं।

ना दसरथ घरि औरति आवा। ना लंका का राम सतावा।

अन्य रमैनियों में उन्होंने हिदू–मुसलमानों के कर्मकांडों का खंडन किया है। साथ ही सृष्टि, परमात्मा और संसार संबंधी विचार भी व्यक्त किए है।

चौंतीसा

चौंतीसा नामक काव्य रूप 'कबीर बीजक' में ही मिलता है। इसमें देवनागरी वर्णमाला के स्वरों को छोड़ क, त्र, ज्ञ को छोड़ कर अन्य व्यंजनों में रचनाएं की गई है। चौंतीसा में चौपाई छंदों का प्रयोग है। बीजक में इस काव्य रूप को ज्ञान चौंतीसा भी कहा गया है। क्योंकि इसमें आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा की गई है। विषय की दृष्टि से इन पदों में कोई परस्पर संबंध नहीं है। प्रत्येक वर्ण के आधार पर एक स्वतंत्र पद्य की रचना की गई है।

बावनी

बावनी कबीर का एक अन्य काव्य रूप है जो कि कबीर ग्रंथावली और आदिग्रंथ में प्राप्त नहीं है। यूं तो नागरी लिपि में भी 52 अक्षर है। परन्तु कबीर की बावरी में स्वरों तथा त्र, ज्ञ को छोड़ दिया गया है। यद्यपि यह रचना 34 अक्षरों पर की गई है। लेकिन परंपरा से इसे बावनी कहा गया है। बावनी के आरंभिक विपदियों में द्विपादियों का आरंभ

नागरी लिपि के 52 वर्णों में से किसी एक से किया गया है। आदिग्रंथ में इसे 'बावनी अबरी' कहा गया है। तथा इनका संकलन 'रागु गउड़ी' के अंतर्गत किया गया है। बावनी के प्रमुख छंद दोहा, चौपाई नहीं है।

विषय की दृष्टि से ये आध्यात्मिक रचनाएँ है। कबीर के विचारानुसार समूचा संसार 52 अक्षरों और तीन लोकों में समाहित है। लेकिन वह ब्रह्म इन सबसे परे है। क्योंकि अक्षर नष्ट हो जाएंगे पर वह ब्रह्म नहीं। ब्रह्म की विस्तृत चर्चा करने के पश्चात कवि ने अंत में संसार की नश्वरता पर प्रकाश डाला है।

विप्रयतीसी

यह काव्य रूप केवल कबीर बीजक में मिलता है। इसमें ब्राहमणों के झूठे अभिमान की आलोचना की गई है। इसमें तीन पंक्तियों के बाद अंत में एक सारणी दी गई है। मूलतः यह 'विप्रमती' अर्थात ब्राहमणों की बुद्धि से संबंधित है। कबीर साहब ने ब्राहमणों की इसलिए आलोचना की है क्योंकि वे ब्रह्म ज्ञान रखने के बावजूद इसका आचरण नहीं करते, कबीर के मतानुसार वह ब्रह्म सभी में व्याप्त है। अतः सामाजिक भेदभाव व्यर्थ है।

वार

आदिग्रंथ में एक रचना वार शीर्षक के अंतर्गत दी गई है। थोडे परिवर्तन के साथ यह रचना कबीर ग्रंथावली में भी मिलती है। आदिग्रंथ में यह राग गउडी में रचित है। और ग्रंथावली में राग 'बिलावल' में। संत कवि काल तत्व को भगवान को दन्ड कहते हैं। उसी फल को वे जीवन में उतारना चाहते हैं। अतः जो रचनाएं तिथियों और दिनों के नाम से लिखी गई है। उन्हें वार कहते हैं। वार का अर्थ है संप्राट के सात दिन। इनका आरंभ आदित्यवार से किया गया है।

यथा – उपादित करै भगति आरंभ, काया मंदिर मनसा थंभ।

इस प्रकार सप्ताह के सातों वारों के नाम को क्रमशः लेकर जो उपदेशात्मक पद्य लिखे गए उनको 'वार' कहा गया है। गोरखवाणी में उन्हें 'सप्तवार' कहा गया है। बुल्लेशाह की अठवारा शीर्षक रचना मिलती है। संत रज्जब और हरिदास ने भी सात वारों के आधार पर उपदेश दिए है। सहजोबाई ने भी सात वार निर्नय नामक रचना लिखी जो कुंडलिया छंद में है।

थिती

थिती काव्य रूप का प्रचलन कबीर साहब से पहले ही देखा जा सकता है। गोरखनाथ की पंद्रह धिती नामक रचना 'गोरखवाणी' में संकलित है।

गुरू नानक देव की थिती नाम रचना आदिग्रंथ में मिल जाती है। श्री परशुराम, सहजोबाई, सूरदास, तुलसीदास आदि ने भी इस काव्य का प्रयोग किया है। आदिग्रंथ में ही कबीर की थिती नाम की रचना प्राप्त होती है। इसका प्रयोग थितियों के अनुसार किया गया है। 'परवा से पूनिऊ' की तिथियों में कुछ पंक्तियों में इसकी रचना की गई है और यह राग गउडी में है। इसमें आध्यात्मिक विषय को आधार बनाया गया है। कुछ थितियों में उपदेश भी दिए गए है।

चांचर

चांचर शब्द 'चर्चरी' से उत्पन्न है। संस्कृत में चर्चरी शब्द का ही प्रयोग होता है। यही प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं में परिवर्तित होकर चर्चरी बन गया। चर्चरी एक श्रृंगार प्रधान काव्य रूप है। उसे श्रृंगारिकता के स्थान पर आध्यात्मिकता के चांचर का विषय बनाया। कबीर बीजक में ही यह काव्य उपलब्ध होता है। आदिग्रंथ में चांचर से मिलता–जुलता सतावनवां पद प्राप्त होता है। बीजक के चांचर की आठ पंक्तियां आदि ग्रंथ के इस पद से मिलती

है। यह काव्य रूप कालिदास और बाणभटट के काल में प्रयुक्त हो रहा था। जैन साहित्य में भी इसका काफी प्रयोग हुआ।

बसंत

कबीर साहित्य का एक अन्य काव्य रूप बसंत है। बीजक, आदिग्रंथ और कबीर ग्रंथावली तीनों में यह काव्य रूप उपलब्ध होता है। यहां बसंत ऋतु में फागू आदि पद्य अत्याधिक आनंद और उल्लास के कारण गाए जाते हैं। कबीर साहब ने बसंत काव्य रूप में उपदेशात्मक प्रवृति को अपनाया है। इसमें कवि ने माया और इसके अनेक भेदों पर प्रकाश डाला है। संत साहित्य में इस काव्य रूप का बड़ा प्रचलन हुआ। संत जगजीवन साहब, दरिया साहब, भीखा साहब, गुलाम साहब, चरण दास सहजोबाई आदि ने बसंत रूप में रचनाएं लिखी है।

हिंडोला

हिंडोला काव्य केवल बीजक में मिलता है। इसका संबंध सावन के महीने में महिलाओं के हिंडोला झूलने और गीत गाने से हैं। कबीर काल में यह एक जना प्रचलित काव्य रूप था। अब कवि ने इसे ज्ञानोपदेश का साधन बनाया। कबीर साहब तो सारे संसार को ही हिंडोला मानते है। पाप–पुण्य के खंभे हैं और शुभ–अशुभ कर्म आदि का विवेचन किया है। कवि ने समूची सृष्टि को ही रस हिंडोले पर झूलते हुए दिखाया है।

बेलि

कबीर बीजक में बेलि के नाम से दो रचनाएं प्राप्त होती है। इसकी प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'हो रमैया राम' दोहराया गया है। यह छंद गेय प्रधान है। कवि ने वाङ्मय को उधान माना है। और वृक्षों को ग्रंथ। संत कबीर की बेलि, उपदेश प्रधान काव्य रूप है। कबीर के बाद दादू, दरिया आदि संतों ने इस काव्य रूप का प्रयोग किया।

कहरा

कबीर बीजक के कहरा काव्य रूप के बारह उदाहरण है। ये तार और लय के साथ गाया जाने वाला काव्य है। तथा इसमें नृत्य भी किया जाता है। हनुमानदास जी ने इसका अर्थ उपदेश के रूप में लिया है। कुछ विद्वान कहारों के गीत तथा जन्म–मरण में कहरा का प्रयोग करते हैं। परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार संसार के जन्म–मरण रूपी कहर से बचाने वाला कहरा है। इनका गायन लय के अनुसार होता है। तथा प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'हो, गे या' हे' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। इनमें ज्ञान, वैराग्य तथा आध्यात्मिक बातों को समझाने का प्रयास किया गया है। एक उदाहरण देखिए–

> रामनाम भजु रामनाम भजु, चेति देखु मन माहीं हो

बिरहुली

कबीर बीजक में 'बिरहुली' नामक रूप भी प्राप्त होता है यह तेरह पंक्तियों की रचना है। प्रत्येक पंक्ति के अंत में बिरहुली शब्द का प्रयोग है। इसके अर्थ के बारे में विद्वानों में काफी मतभेद है। हनुमान दास ने इसका अर्थ विरह जीव बताया है। परशुराम चतुर्वेदी ने इसका अर्थ विरहिणी करते है और हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बिरहुली सांप का विष उतारने वाला गीत कहा है। 'बिरहुली' शब्द बिरहुला से बना है। जिसका अर्थ है– सर्प। अतः द्विवेदी जी का बताया हुआ अर्थ तर्कसंगत प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि झाड–फूँक कर विष उतारने वाले ओझा इस काव्य रूप का प्रयोग करते रहे होंगे। गांव में इस प्रकार को विषहरी या बिरहुली कहा जाता है।

उलटबांसी

उलटबांसी काव्य रूप न होकर एक विशिष्ट पद्धति है। इसमें कथ्य को प्रस्तुत करने का एक विशेष ढंग होता है।

यह एक बांधी–बंधाई विशेष अभिव्यंजना शैली है। अतः इसे भी काव्य रूप कहा जा सकता है। उलटबांसियों में आध्यात्मिक बातों का वर्णन लोक–विपरीत पद्धति से किया जाता है। साधकों का कहना है कि परमतत्व को प्राप्त करने के लिए संसार के प्रवाह के प्रतिकूल ही चलना पड़ता है। इसीलिए इस काव्य रूप में मान मर्यादाओं, विधि, विधानों और प्राकृतिक नियमों के विरूद्ध बात कहनी पड़ती है। इसीलिए तो इसे उलटबांसी कहा गया है। कबीर से पहले सिद्धों और नाथों ने अपनी अनुभूति एवं सिद्धांतों को गुप्त रखने के लिए उलटबांसी का प्रयोग किया। उलटबांसी शब्द की व्युत्पति के बारे में अनेक मत है। उलटा +बांस से स्त्रीलिंग शब्द उलटबांसी माना जाता है। उलट+ बास से भी व्युत्पति हो सकती है। जिसका अर्थ होगा– उलटी हुई सी।

पुनः इस शब्द का संबंध उलट+वंशी अर्थात् बांसुरी से भी हो सकता है। यथा–विरोध पर आश्रित, सादृश्य पर आश्रित, गूढार्थ प्रतीति पर आश्रित आदि दो एक उदाहरण देखिए

एक अचम्बा देखा रे भाई ठाढ़ा सिंह चरावै गाई।
जल की मछली तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगैं खाई।
बैलहि दाबि गूनि घरि आई, कुत्ता कूं लै गई बिलाई।।

और

अंबर बरसै धरती भीजे यह जानैं सब कोई।
धरती बरसै अम्बर भीजे, बूझै बिरला कोई।।

निष्कर्ष –

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर साहब ने जनप्रचलित काव्य रूपों का ही अधिकतर प्रयोग किया है। ये काव्यरूप सिद्धों तथा नाथों के काल में प्रयुक्त होते चले आ रहे थे। विचारों और भावों को अभिव्यक्त करने के लिए कबीर ने भी इनका खुलकर प्रयोग किया है। परवर्ती संतों और भक्तों ने भी इन काव्य रूपों को अपनाया। बाद में तो इन काव्य रूपों की एक परंपरा ही चल पड़ी। कबीर के बाद संत परम्परा में काव्य रूप काफी लोकप्रिय रहे।

8. कबीर का समाज दर्शन

आधुनिक अर्थ में कबीर को समाज सुधारक या समाज दृष्टा नहीं कह सकते। उनकी चेतना मूलतः आध्यात्मिक थी। वे समाज–रचना के लिए किसी प्रकार के सुधारवादी आन्दोलन के पुरस्कर्ता न होकर मानव आत्मा की मुक्ति के लिए आध्यात्मिक संघर्ष करने वाले साधक थे। उनका सारा संघर्ष आसक्ति एवम् तृष्णा के विरूद्ध था। वे 'मन' को जीतने के लिए सन्तों और भक्तों को प्रेरित करते रहते थे। वे जब संसार में अनादि काल से व्यापत दुःख के मूल कारण पर विचार करते थे तो उन्हें लगता था कि आसक्तियों पर जय प्राप्त न कर सकने के कारण सारा संसार दुखी है। उन्होंने कहा कि क्या गृही, क्या वैरागी सभी दुःखी हैं। राजा हो या रंक दुःख की परिधि से बाहर कोई नहीं है। इस प्रकार कबीर की दृष्टि में मनुष्य को सुखी होने के लिए अपने से ही संघर्ष करना है। अपने मन को ही जीतना है।

कबीर के अनुसार यह सारा व्यक्त जगत् एक ही तत्त्व से उत्पन्न है। इसलिए सभी प्रकार की भेद दृष्टि मिथ्या है। मानव–मानव में भेद तो परम अज्ञान का द्योतक है। इसी तत्त्व–दृष्टि से प्रेरित कबीर ने जाति–पाँति, छुआछुत, ऊँच–नीच और ब्राह्मण–शूद्र के भेद का विरोध किया है। इसी आधार पर उन्हें समाज–सुधारक समझा जाता है।

कबीर साहब मध्यकाल के एक महान संत, समाज सुधारक, दार्शनिक तथा कवि है। उनका जीवन वृत अनेक किवंदतियों से घिरा है। ब्राह्मण घर में जन्म लेने के बाद मुस्लिम जुलाहा दंपति ने उनका पालन–पोषण किया। लोई नाम की उनकी पत्नी थी तथा कमाल, कमाली पुत्र व पुत्री का भी उल्लेख मिलता है। उन्होंने अपने जीवनकाल का अधिकांश समय काशी में व्यतीत किया। लेकिन अंत समय में वे काशी छोड़कर मगहर चले गए। उनके लिए काशी और मगहर में कोई अंतर नहीं था। इस संदर्भ में उनका एक दोहा भी है।

जो कासी तन तजहि कबीरा, तो रामहि कौन निहोरा।

क्या कासी क्या मगहर, असर हिरदै राम जो होई।।

कबीर साहब ने स्वयं को न तो हिंदू और न ही मुसलमान कहा है। यही कारण है कि उनके अनुयायियों में सभी धर्मों के लोग है। जब कबीर साहब का निधन हुआ तो उनके शव को लेकर हिंदू–मुसलमानों में वैचारिक मतभेद भी हुआ। वस्तुतः कबीर साहब पंथियों ने उन्हें दिव्य पुरूष प्रमाणिक करने का प्रयत्न किया और कबीर सम्प्रदाय को जन्म दे दिया। परन्तु कबीर का यह उद्देश्य कदापि नहीं था। वे तो आजीवन धार्मिक कर्मकांड़ों, जातीय संकीर्णता और मिथ्याचार का विरोध करते रहे। कबीर साहब ने घोषणा भी की।

कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।

जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ।।

क्रांतिकारी युगद्रष्टा

कबीर साहब एक क्रांतिकारी युगद्रष्टा थे। उन्होंने तत्कालीन संकीर्ण, राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक वातावरण में नवीन सामाजिक सिद्धांतों का श्रीगणेश करने का प्रयत्न किया।

उन्होंने परम्पराओं का खण्डन करते हुए समाज में परिवर्तन की धारा को प्रवाहित किया। उन्होंने मध्यकालीन भारतीय समाज में नवीन क्रांति उत्पन्न की। उन्होंने सामाजिक विषमता को अन्याय घोषित किया और ज्ञान के द्वारा लोगों में सामाजिक धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना को जागृत किया। वे सच्चे जनवादी कवि थे और जनता की भावनाओं तथा आकांक्षाओं को भली प्रकार समझते थे। अतः उन्होनें जन भाषा का सहारा लेते हुए समाज की विसंगतियों पर प्रहार किया। तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों के कारण ही वे क्रांतिकारी कवि बन सके। आचार्य परशुराम चतुवेर्दी के शब्दों में

'संतकबीर की गणना उन इने गिने महान पुरूषों में निःसंदेह की जा सकती है जिन्होनें अपने समसामयिक समाज की गतिविधियों को भली भांति परखना तथा ऐसे आवश्यक मोड़ देना अपना परम कर्तव्य समझा। उनको अपने समाज के अंतर्गत चाहे उन्हे पर्याप्त योग्यता अर्जित करने का कभी समुचित अवसर न मिला हो वे इस कारण कभी विचलित व हताश नहीं हुए। उनके पास आत्मबल था और दुर्दम्य साहस था, जिस कारण उन्हें विपथ चलने का भटकने वालों को चाहे वे किसी भी उच्च स्तरीय वर्ग के क्यों न हो, अपनी भूलों पर एक बार दृष्टिपात करने के लिए वे किसी भी उच्च स्तरीय वर्ग के क्यों न रहे हों। अपनी भूलों पर एक बार दृष्टिपात करने के लिए सजग कर देना चाहा।

ऐसा करते समय उन्होंने किसी भी वर्ग विशेष का पक्ष नहीं लिया और न ही कोई पक्षपातपूर्ण प्रहार किया। यदि उन्होंने कभी कोई शब्द किसी उपदेश के रूप में कहा, उस दशा में भी उन्होंने बराबर यही चेष्टा की कि जिस किसी के प्रति ऐसा कहा जा रहा है वह उसकी अपने अनुभव द्वारा स्वयं जांच पड़ताल कर ले।

जो कोई भी बात अस्वीकार की जाए, उसे नीति बनाकर अंगीकार किया जाए।''

कबीर साहब भक्तिकाल के सर्वाधिक प्रासंगिक कवि थे। उनकी यह प्रासंगिकता आज भी उपयोगी है। उन्होंने मध्यकालीन, सामंती समाज के प्रति अपना आक्रोश निर्भय होकर तीखे शब्दों में व्यक्त किया। यही कारण है कि हरि शंकर परसाई कबीर को प्रेरणा पुरूष कहते हैं। एक तरफ तो कबीर का विद्रोही स्तर है तो दूसरी ओर पर ब्रह्म के प्रति उनका समर्पण है। इसीलिए कबीर की विशिष्ट पहचान है।

कबीर पूर्व सामाजिक चेतना

जब हम कबीर पूर्वकाल के बारे में सोचते हैं तो हमें पता चलता है कि बौद्ध धर्म और जैन धर्म के काल में ही सामाजिक चेतना का विकास होने लगा। ब्राह्मण धर्म की वर्णव्यवस्था, आत्मवाद अस्तिकता आदि को चुनौती मिलने लगी। परन्तु शीघ्र ही ये धर्म विभाजन के शिकार बन गए। बौद्धों से प्रभावित होकर सिद्ध और नाथ साहित्य ने नई आचार संहिता बनाने का प्रयास किया। इन्होंने जहां एक ओर निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना पर बल दिया वहां दूसरी ओर आचरण के प्रति आग्रह को व्यक्त किया। यही नहीं इन कवियों ने जन भाषा की ठेठ शब्दावली में जनसाधारण को संबोधित किया। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि सिद्धों व नाथों की कविता अभिजात्यवाद से मुक्ति की कविता है। यही परंपरा हमें कबीर में देखने को मिलती है। यह एक प्रमाणिक सत्य है कि कबीर साहब सिद्धों व नाथों से अत्याधिक प्रभावित हुए है। समाज के प्रति उनकी गहरी चिंता थी और इस चिंता से मुक्त होने के लिए वे बड़ी ईमानदारी के साथ समाज की विसंगतियों का पर्दाफाश करते हैं कबीर साहब विद्वान होने का दावा नहीं करते, वे तो बड़ी विन्रमता के साथ कहते हैं कि उन्होंने मसि, कागज को छु आ तक नहीं और न ही हाथ में कलम पकड़ी है। उन्हें तो आंखो देखी पर विश्वास है। आचरण पक्ष में उनकी अटूट आस्था है वे कहते हैं–

पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय

ढ़ाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कबीर साहब की सामाजिक चेतना पूर्ववर्ती बौद्धों, जैनों, सिद्धों और नाथों से प्रभावित है। कबीर साहब ने अनुभव किया कि पुरोहित वाद अहंकार का प्रतीक बन चुका है। एक ओर हिंदू धर्म अनेक जातियों में विभक्त हो चुका था। दूसरी ओर हिंदू–मुस्लिम वैमनस्य भी उत्पन्न हो चुका था। कबीर को लगा कि अब कविता का कर्म अभिव्यक्ति के क्षेत्र का विषय नहीं रहा। बल्कि अब तो कविता को सामाजिक व सांस्कृतिक दायित्वों का निर्वाह करना है। इसलिए कबीर ने अपनी वाणी में सामाजिक चेतना को मुखरित किया।

एक यथार्थवादी एवं सजग कवि

कबीर साहब में अदम्य आत्म विश्वास था। वे जिस जमीन पर खड़े थे। वह मजबूत थी, उसका मानवीय आधार ठोस था। जुलाहा वर्ग से आए इस विद्रोही कवि ने पास न केवल ईमानदारी ही थी बल्कि निर्भयता की पूंजी भी थी। वे सजग यथार्थवादी कवि होने के कारण हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को खरी–खोटी सुनाते हैं।

कबीर ने समाज में प्रचलित परंपरागत रूढ़ियों, विविध कर्मकांड़ों तथा पंडे, मुल्लाओं के व्यक्तिगत दुर्गुणों की कठोर निंदा की। परन्तु उनका लक्ष्य था आदर्श समाज की रचना करना। इसीलिए वे आजीवन समाजिक समस्याओं से जूझते रहे। सामाजिक प्रगति के लिए वे सदैव प्रयास करते रहे। उन्होंने निरपेक्ष सत्य की अभिव्यक्ति की। उनकी दृष्टि में कविता का लक्ष्य है मानव मात्र का कल्याण करना। इसलिए उन्होंने कहा भी है।

हरि जी यहै विचारिया, साषी कहौ कबीर

भौ सागर में जीव है, जो कोई पकड़े तीर

व्यक्ति और समाज का समन्वय

कबीर ने अपने देश और काल को सामने रखकर व्यष्टि और समष्टि की गहराईयों में प्रवेश करके जो अनुभूतियां प्रस्तुत की है। उन्हीं में व्यक्ति और समाज का अंदर–बाहर अभिव्यंजित हुआ है। वे समाज की खबर लेते समय व्यक्ति के अंतर को भी खोजते रहे। उन्होंने व्यक्ति और समाज के हदय और आचरण में समन्वय न देखकर जो विद्रोहपूर्ण व्यंग्य प्रहार किए है। वे एक ओर सामाजिक कमजोरियों को व्यक्त करते हैं, दूसरी ओर धार्मिक व्यक्तियों के दंभ और छद्म की धज्जियां उड़ाकर व्यक्ति और समाज के प्रतिशोध का ही प्रयत्न करते है।

संत का उद्देश्य समाज सुधार न होतो भी उनकी वाणी में समाज सुधार की प्रेरणा रहती है। उनके आचार लोक को आचारवान बनाता है। उनका आचरण किसी खास समाज या देशकाल के लिए न होकर सार्वकालिक और सार्वदेशिक होता है। इसीलिए संत कबीर ने अहिंसा, सत्य और शांति पर बल दिया। जब वे दोनों संप्रदायों की निंदा करते हैं तो उसके पीछे केवल यही भाव होता है। कि बाहरी आचरण में आने वाले तत्वों को भीतरी शांति, अहिंसा और सत्य से जोड़े रखना चाहिए।

भीतर को शुद्ध रखकर ही बाहर को शुद्ध रखा जा सकता है। जब वे कहते हैं कि दढ़िया बढ़ाई जोगी, होइ गइले बकरा। तो इसका अर्थ मात्र इतना है कि दाढ़ी का भीतरी शुद्धता से संबंध होना चाहिए। इसीलिए पहले कहते हैं मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपरा'' मूल है मन रंगना अर्थात मन का परिवर्तन।

मन परिवर्तन की गीता में भी कहीं गई, बुद्ध ने भी कही, संत कबीर भी कहते हैं। संतों ने अपने मन को सुधारा था, इसी संदर्भ में कबीर का महत्व स्वीकारते हैं। व्यक्ति मन का सुधार ही समाज सुधार है।

नारी का विरोध उन्होंने माया और कामिनी के रूप का ही किया है। लेकिन पतिव्रता के रूप पर वारौकोटि सरूप कहकर पतिव्रत धर्म की सराहना की है। मां, सती, बहन, नारी आदि के प्रति उन्होंने आदर भाव प्रकट किया है।

वर्णाश्रम धर्म और कर्मकांड़ों का खंडन

कबीर ने देखा था कि सामाजिक विषमता का मूल कारण विभिन्न धर्मग्रंथों के प्रति अंधविश्वास है। अतः उन्होंने पुस्तकीय ज्ञान का खंडन और अनुभूति मूलक सत्य का मंडन किया है।

"तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आंखिन की देखी"

इन विभिन्न धर्मग्रंथ के आधार पर बनी वर्णव्यवस्था भी कबीर के अनुसार विश्वसनीय नहीं थी। जहां ब्राहमण चाहे दुराचारी हो , सम्माननीय था, दलित चाहे जितना सदाचारी हो नीच समझा जाता था। कबीर ने व्यक्ति की उच्चता का आधार सदाचार और साधना को माना न कि उनके जन्म कुल को उन्होंने पंडितों को ललकारा।

उच्च कुलाभिमानी ब्राह्मणों को अकाट्य तर्क देते हुए उन्होंने कहा–

जे तू बामन बमनी का जाया

आन राह ते काहे न आया।

इसी प्रकार यदि तुर्क अन्य लोगों से अलग होते तो मां के गर्भ में ही उनका खतना हो गया होता–

जे तू तुरक तुरकनी जाया, तो भीतर खतना क्यूं न कराया।

उन्हें जहां कहीं भी विषमता दिखाई दी उनके व्यंग्य बाग निकल पड़े। उन्होंने देखा था कि काजी कुरान में उलझकर जीवन की वास्तविकता से परिचित नहीं होते। अतः उन्हें फटकारते हुए उन्होंने कहा कि हिंदू और मुसलमान दो भिन्न धर्म कहाँ से आए।

वस्तुतः कबीर मनुष्य को एक मानते थे। वे जात–पात, कुल–वंश, रक्त–नस्ल के आधार पर मनुष्य में अंतर करने के विरूद्ध थे।

ऊँचे कुल का जनमिया जे करणी ऊंच न होय।

सेवन कलस सुरे भरया साधु निंधा सोई।।

इस स्तर पर भी कबीर के विरोध का प्रेरणा स्त्रोत आध्यात्मिक सत्य ही है। वे भेदभाव का विरोध इसलिए करते थे कि ये तत्व मिथ्या है।

वे कहते है कि एक ज्योति में सब व्याप्त है, दूसरा कोई तत्व है ही नहीं–

एकहि जोति सकल हरि व्यापक, दूजा घट न कोई।

कहे कबीर सुनो रे सन्तों, भटक मरि जनि कोई।।

बाह्माचारों तथा आडंबरों का विरोध

कबीर की समाज चेतना तत्कालीन समाज की जर्जर अवस्था को देखकर अभिव्यक्ति के लिए तड़प उठी। उन्होंने एक–एक कर समस्त आडंबर मूलक प्रवृतियों को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया। कबीर के विचार से दोनों धर्मावलंबियों के आडंबर और कर्मकांड व्यापक रूप ले चुका था। अतः उन्होंने विविध धार्मिक आडम्बरों की खिल्ली उडाई है। उन्होंने हिंदुओं के उपवास करने, माला फेरने, तीर्थ स्थान जाने तथा मूर्तिपूजा इत्यादि को पांखड कहा। माला फेरने से परमात्मा मिलता तो रहट को भगवान क्यों नहीं मिल जाते? माला पहरयां हरि मिले, तो अरहट के गलि देष। यदि तीर्थों में स्नान करने का महत्व है तो वहां के जल में निवास करने वाले मेंढक क्यों नहीं मुक्त हो जाते? मूर्तिपूजा की भी कबीर में खुलकर निंदा की है क्योंकि पत्थर की मूर्तियां तो जन्म भर उतर नहीं देती। हिंदू

जीवित पिता की सेवा नहीं करते किंतु मृत्यु के बाद पिडंदान देते हैं। यह ढोंग, नहीं तो क्या है। जीवित पित्र कूं बोले अपराध, मूवां पीछे देति सराध। इस प्रकार कबीर ने हिंदुओं में प्रचलित समस्त रूढ़िगत धारणाओं और ब्रह्मचारों पर कुठारघात किया है।

वे सारे औपचारिक कर्म विधान जिनके मूल में कोई तत्व नहीं है कबीर के लिए व्यर्थ है। गोरखनाथ के प्रति कबीर का श्रद्धाभाव था लेकिन ढोंगी गोरखपंथियों की उन्होंने खबर ली है। कि शरीर को योगी बना लेते हैं किंतु मन को वश में नहीं कर पाते। ''तन को जोगी सब करैं मनकौं बिरला कोई, सब सिद्धि सहजें पाइयें जे मन जोगी होई।'' उन्होंने जितने विस्तार से हिंदू धर्म से संबंधित संप्रदायों के ब्रह्मचारों की कटु आलोचना की है उतनी ही इस्लाम और उसके सम्प्रदायों की भी की है।

कबीर मुसलमानों की हिंसात्मक मनोवृति पर तरस खाते हुए कहते हैं कि ये जिस माता का दूध पीते हैं न जाने उसकी हत्या क्यों करते हैं– ''दिन में रोजा रखते है राति हनत है गाय? नमाज गुजारना या हज और काबे जाना तभी सार्थक है जब दिल में कपट नहीं है।– दिल महि कपट, निवाज गुजारे, क्या हज काबे जाए?'' कबीर ने पंडित और मुल्ला दोनों को अज्ञानी कहा क्योंकि ये दोनों धर्म के नाम पर समाज में पाखंड फैलाकर सामाजिक भेदभाव की दीवारें खड़ी कर रहे थे।

तात्पर्य यह है कि कबीर ने जहाँ कहीं ढोग, दिखावा, कपट, आडंबर, स्वांग, छल–कपट, आडंबर, स्वांग, छल–छद्म देखा वही निर्भय होकर प्रहार किया। पंडित हो या मौलवी गुरू हो या पीर, योगी हो या फकीर यदि वे सत्य मार्ग से अलग है तो कबीर ने उसे चेतावनी दी है, व्यंग्य और उपहास किया है। इन सबके पीछे उनका उद्देश्य धार्मिक भूलों का परिष्कार ही था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है– ''शास्त्रीय आतंकजाल को भिन्न करके और लोकाचार का जंजाल को ढहाकर वे सहज ही सत्य तक पहुंच सके थे। इसमें कोई संदेह नहीं।

आदर्शवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य

कबीर साहब सामाजिक दीन–हीनता के कारण काफी दुखी थे। सारा संसार हंसी खुशी सोता था। लेकिन कबीर साहब जाग–जाग कर रोते थे। एक स्थल पर तो वे कहते हैं–

सुखिया सब संसार है, खावै और सोवे।

दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे।।

उन्होंने अपने ज्ञान चक्षुओं के द्वारा समाज के प्रत्येक धर्म, वर्ग और संप्रदाय को यहाँ तक कि समूची जाति को बाहर और भीतर से देखा था। उन्हें एक ऐसी दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। जिसके कारण वे यह अनुभव करने लगे कि सभी मनुष्यों में एक ही ईश्वर का वास है। वह घट–घट में निवास करते है। एक स्थल पर वे कहते भी हैं–

एक मेक रमि रह्या सबनि में तो काहे भरमावौ।

उन्हें लगा राम, रहीम एक ही है। इसलिए उन्होंने हिंदू–मुसलमानों दोनों को निर्गुण निराकार ईश्वर की भक्ति करने की सलाह दी। इस संदर्भ में वे कहा भी–

एक ज्योति से जब जग उपज्या, को बामन को सूदा।

वे सत्संग द्वारा सामाजिक एकता की स्थापना करना चाहते थे। उन्होनें केवल मानव–मानव में तात्विक दृष्टि से अभेद बताकर वर्ग, जाति संप्रदाय के भेदभाव को दूर करने का संदेश ही नहीं दिया, वैसा आचरण भी किया। मानव जाति की समता और एकता उनका समाज दर्शन था। इसीलिए उन्होनें मानव समाज में भेद उत्पन्न करने वाले बाह्याडम्बरों संप्रदायों, रूढ़ियों और अंधविश्वासों के प्रति कठोर रूख अपनाया। उनकी वाणी और कर्म का एक ही प्रधान स्वर था कि हम सब हरि की निर्मल ज्योति के स्फुलिंग हैं। वे समाज रचना के लिए किसी प्रकार के

सुधारवादी आंदोलन के पुरस्कर्ता न होकर आत्मा की मुक्ति के लिए आध्यात्मिक संघर्ष करने वाले साधक थे। उनका लक्ष्य मात्र जाति, धर्म, वेद, कुरान, अनैतिक कर्म की निंदा करना ही नहीं था। बल्कि वह ऐसा समाज चाहते थे जिसमें मनुष्य सेवा में प्रस्तुत हो। धर्म और राजनीति के दास बने, तत्कालीन समाज का खंडन कबीर ने इसी उद्देश्य से किया था। उनके मन में ऐसे आदर्शवादी समाज की परिकल्पना थी जिसमें सभी समाज सुखी हो। इसीलिए उन्होंने मनुष्य धर्म पर नये सिरे से चिंतन किया और मनुष्य को सहज मार्ग पर चलने का निदेर्श दिया। उनके विचार में सारी नैतिकता व आध्यात्मिक समाज–सुधार के लिए आवश्यक है। समाज में रहकर आजीविका के लिए उद्योग करना, दूसरों पर यथास्थिति उपकार करना, जीवन में सत्य आचरण और अहिंसा का पालन करना उनके समाज दर्शन का लक्ष्य था।

मनुष्य मात्र पारस्परिक प्रेम और सामूहिक संगठन में परम आनंद का अनुभव करे, यही उनके ईश्वर प्रेम और सत्संगति के संदेश का मर्म है। उनका विद्रोही समाज दर्शन ब्रह्म जीवन को नैतिक सदाचार की मर्यादा में बांधने वाला, उसके मन का परिष्कार करने वाला और उसकी आत्मा को विश्वात्मा में लय करके उसे सच्चे मानव धर्म की ऊंचाई तक पहुंचाने वाला है। कबीर के विद्रोही विचारों ने तत्कालीन समाज को मर्यादा प्रदान की, तामसिकता को सात्विकता में बदलने की कोशिश की मोहांधता को ज्ञान का प्रकाश दिखाया और दुराचरण को सदाचरण में परिवर्तित करने का प्रयास किया।

9. कबीर का दार्शनिक चिंतन

कबीर मुख्यतः एक साधक थे। 'सत्' के स्वरूप का तो उद्‌घाटन उन्होने किया है वह अपने आध्यात्मिक अनुभव के बल पर किया है। वह उनका अनुभूत सत्य है उनका प्रतिभ ज्ञान है। उन्होंने तर्क एवम् बौद्धिक विश्लेषण के आधार पर तत्त्व–निर्णय की चेष्टा नही की है। इसलिए 'दर्शन' शब्द के मूल अर्थ को ध्यान में रखकर विचार किया जाये तो कबीर को दार्शनिक नहीं किया जा सकता। दार्शनिक वस्तु के तात्विक स्वरूप का निर्णय बुद्धि से करता है। उसका निर्णय सामान्य, तर्काश्रित एवम् सर्वमान्य होते हैं। उसके चिन्तन में पूर्ण संगति एवम् विचारों में तारतम्य होता है। दार्शनिक के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह धार्मिक और नैतिक भी हो किन्तु साधक और भक्त के लिए चरित्रवान धार्मिक और नैतिक होना आवश्यक है। पूर्ण दार्शनिक मान लेने पर उन्हें रहस्यवादी कहना असंगत होगा। इसलिए कबीर को दार्शनिक मानकर उनके विचारों में भारतीय दर्शनों में से किसी एक की पूर्ण चरितार्थता ढूँढना बुद्धिसंगत नहीं होगा। कबीर के दार्शनिक व्यक्तित्त्व के विषय में निर्णयात्मक रूप से कुछ कहना आसान नही है।

कबीर का लक्ष्य न तो काव्य रचना करना था और न ही कोई दार्शनिक मत प्रस्तुत करना। फिर भी ईश्वरीय भक्ति में प्रेम की भाव व्यंजना करते समय उन्होंने ब्रह्म, जीव, जगत तथा माया आदि के बारे में भी अपने विचार व्यक्त किए। उन्हीं के आधार पर उनके दार्शनिक विचारों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनके व्यक्तित्व के बारे में लिखा भी है–

कबीर साहब ऐसे मिलन बिंदु पर खड़े थे जहां एक ओर हिंदूत्व निकल जाता है। दूसरी ओर मुसलमानत्व। जहां एक ओर ज्ञान निकल जाता है दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ एक ओर योगमार्ग निकल जाता है दूसरी और भक्ति मार्ग, जहाँ एक तरफ निगुर्ण निकल जाता है दूसरी ओर सगुण साधना। उसी प्रशस्त चौराटे पर वह खड़े थे। वह दोनों ओर देख सकते थे। और परस्पर विरूद्ध दिशा में गए हुए मार्गों के गुणदोष उन्हें स्पष्ट दिखाई देते थे।"

यही कारण है। कि कबीर को वाणी में विद्वानों ने दार्शनिक विचारों को खोजने कर भरसक प्रयास किया है। यदि गहराई से देखा जाए तो कबीर साहब न केवल क्रांतिकारी समाज सुधारक थे वे एक दार्शनिक कवि भी थे। इस संबंध में महादेवी वर्मा ने लिखा भी है– ''कवि में दार्शनिकता को खोजना बहुत साधारण हो गया है। जहां तक सत्य के मूलरूप का संबंध है। वे दोनों एक दूसरे के अधिक निकट है अवश्य पर साधन और प्रयोग की दृष्टि से उनका एक होना सहज नहीं। बुद्धि के निम्न स्तर से अपनी खोज आरंभ करके उसे सूक्ष्म बिंदु तक पहुंचाकर दार्शनिक संतुष्ट हो जाता है। उसकी सफलता यही है कि सूक्ष्म सत्य के उस रूप तक पहुचने के लिए वही बौद्धिक दशा संभव रहे। अंतर जगत का सारा वैभव परखकर सत्य का मूल आंकने का उसमें अवकाश नहीं भाव की गहराई में डूबकर जीवन की चाह लेने का अधिकार उसमें नहीं है।

कबीर के काव्य में हमें मन, आत्मा, जगतमाया, मुक्ति आदि विषयों के बारे में कुछ विचार मिल जाते हैं। जिनका विवेचन निम्नलिखित है।

ब्रह्म संबंधी विचार

कबीर उच्च कोटि के महात्मा एवं भक्त थे। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था, ब्रह्म का अन्वेषण करके उससे साक्षात्कार करना। यद्यपि कबीर साहब को विभिन्न धर्मग्रंथों का ज्ञान था लेकिन ब्रहम के बारे में उन्होंने जो विचार

व्यक्त किए है। वे उनकी स्वानुभूति के परिणाम हैं। उन्होंने जो कुछ भी कहा वह बुद्धि और हदय के योग से कहा। ब्रह्म के साक्षात्कार का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं–

लाली मेरे लाल की जित देखू तित लाल।

लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।

कबीर का ब्रह्म संबंधी ज्ञान उपनिषदों के अद्वैतवाद से प्रभावित है। आदि से अंत तक उनकी ब्रह्म भावना अद्वैत से संबंधित है। परन्तु जब वह प्रिय से विमुक्त होकर अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं। तब वे द्वैत का सहारा लेते हैं। परन्तु ये द्वैतमात्र अजान है। अपनी अद्वैतानुभूति को अभिव्यक्त करते हुए वे कहते हैं–

कस्तुरि कुंडल बसे, मृग ढूंढे बन मांहि।

ऐसे घट–घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं।।

अद्वैतवादियों के समान कबीर साहब का विश्वास है कि ब्रहम से ही संसार की उत्पति हुई है और वही ब्रह्म उसे नष्ट भी कर देता है। वह ब्रह्म पूरी तरह निराकार, रूपहीन, और संसार के कण–कण में व्याप्त है। एक स्थल पर वे कहते हैं–

"पानी ही ते हिम भया, हिम है गया बिलाय।

कबीर जो था सो भया, अब कुछ कहा ना जाए"

डॉ सरनाम सिंह ने कबीर साहब के ब्रह्म के बारे में कहा है– "उसी अद्वैत तत्व को कबीर ने अनेक नामों से अभिहित किया है। पारब्रह्म, ब्रह्म, परमात्मा, हरि, निरंजन, अलख, खलिक, निर्गुण, भगवान, राम, पुरूषोतम आदि अनेक नामों से वे उसी अद्वैत तत्व की ओर संकेत करते है। वह गुण विहिन है। उसका न कोई रूप है न रंग है। उसमें न ही कुछ देखने की कोई चीज है। उसका कोई नाम भी नहीं रखा जा सकता, क्योंकि वह निगुर्ण और निराकार है।

यद्यपि कबीर साहब ने ब्रह्म के लिए अनेक नामों का प्रयोग किया है। परन्तु उनकी वाणी में राम तथा हरि शब्दों का प्रयोग ही सर्वाधिक प्राप्त होता है। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वे विष्णु के अवतारवाद में विश्वास रखते थे, उनका राम न तो दशरथ पुत्र है न ही देवकी पुत्र। सत्य तो यह है कि वे प्रभु का स्मरण करने के लिए इन नामों का सहारा लेते हैं। कुछ आलोचकों का विचार है कि स्वामी रामानंद के प्रभाव के कारण उन्होंने बार–बार राम शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु अन्यत्र वे निरंजन तथा अलख नामों से ब्रह्म को याद कर उठते हैं। लेकिन हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि कबीर के ब्रह्म का कोई स्वरूप नहीं है। परन्तु जो साधक उसे पहचान लेता है। वह पुनः ब्रह्म के समान हो जाता है।

कबीर का विचार था कि ब्रहम के मूल तत्व को समझना अत्याधिक महत्वपूर्ण है। जो लोग ऐसा नहीं कर पाते वे ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर पाते।

कबीर साहब जी बार–बार स्पष्ट करते हैं कि वह सारे संसार में व्याप्त है। उस परब्रह्म के न तो हाथ है नहीं कोई रूप। वह सत, रज, तम आदि गुणों से परे हैं, उसका कोई आदि अंत नहीं। वह न पृथ्वी है न वायु है न आकाश है। अग्नि तथा पानी में भी वह नहीं रहता। सरस्वती, गंगा, यमुना, जैसी, पावन नदियों में भी वह नहीं है। समुद्र की लहरों में भी वह निवास नहीं करता। वह पाप–पुण्य से अलग–अलग, वेद–पुराण तथा शास्त्रों से भी परे है। कबीर जी तो घोषणा करते हैं कि उस परमतत्व को न कोई देख सकता है। न प्राप्त कर सकता है। वह न खाता है न पीता है न जीता है न मरता है। उसका कोई रूप रंग अथवा वेशभूषा नहीं है। वह असीम, अनंत,

अनिर्वचनीय, अरूप तथा सर्वव्यापी है।

डॉ सरनाम सिंह ने ब्रह्म के दो स्वरूप माने है। व्यक्त और अव्यक्त। प्रायः ब्रह्म का अव्यक्त। प्रायः ब्रह्म का अव्यक्त रूप आध्यात्मिक ही हुआ करता है।

कबीर का ब्रह्म रूप पूर्णरूपेण आध्यात्मिक है। उन्होंने सर्वत्र अव्यक्त ब्रह्म का ही वर्णन किया है। लेकिन एकाध स्थल पर उन्होंने ब्रह्म के व्यक्त रूप का भी वर्णन किया है।

कबीर में पाए जाने वाले अव्यक्त ब्रह्म के वर्णन आध्यात्मिक होते हुए भी आधिदैविक बन गए है। कि उनका उपास्य मात्र निगुर्ण ब्रह्म है। जिसकी न तो उन्हें पूजा करनी पड़ती है। तथा न उपासना। वे तो उस निराकार ब्रह्म को हदय में ही प्रणाम कर भक्ति कर लेते है।

कबीर का ब्रह्म अपार महिमाशाली है। उसकी शक्ति, उसकी प्रकाश तथा स्वरूप तक कोई नहीं पहुंच सकता। कबीर ने अपने परब्रह्म के साथ मधुर संबंधों की स्थापना की है। तदर्थ वे दाम्पत्य प्रेम पद्धति का सहारा लेते हैं। वे अपने प्रियतम को अपने घर में बुलाते है। क्योंकि उनके बिना कवि का शरीर दुखी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर साहब ने निगुर्ण निराकार और निर्विकार ब्रह्म की भक्ति पर बल दिया है। परन्तु कहीं–कहीं वे सगुण भावनाओं का भी आश्रय ले लेते है।

माया संबंधी विचार

कबीर साहब ने अद्वैतवादियों से प्रभावित होकर माया को मिथ्या माना है। शंकाराचार्य से पहले उपनिषदों तथा श्रीमद्‌भगवत गीता आदि ग्रंथों में माया को ब्रह्म की स्त्री बताया गया है। परन्तु शंकराचार्य ने माया को भावमय ब्रह्म कहा है। वह सभी को भ्रमित करती है। कबीर साहब सांख्यवादियों की विचार–धारा से प्रभावित होकर माया के बारे में चिंतन करते हैं। वे तो स्पष्ट कहते हैं जन्म इसी माया या प्रकृति से होता है। परन्तु यह माया समूचे संसार को अपने वश में करके उसे चरित्र भ्रष्ट कर देती है। अतः कबीर साहब इसे व्याभिचारिणी कहते हैं।

माया संसार में अजान का अंधकार फैलाती है। इसीलिए इसे उन्होंने पापिनी विश्वास घातिनी, मोहिनी, सापिणी, ठगिणी, डाकिनी आदि कहा है। आत्मा संसार में आकर इसी के जाल में फंसती है। सृष्टि के सारे संबंध माया–जन्म है, समस्त सृष्टि मायामय है।

कबीर माया पापणी फंद लै बैठी हाटि,
सब जग तो फंदै पाड्या गया कबीरा काटि।।

कनक और कामिनी माया के प्रधान प्रतीक है। काम, क्रोध, मोह, तृष्णा आदि मानसिक विकार माया के मित्र है। इन्हीं के सहयोग से माया जीव को फंसाती है। उपनिषद के समान कबीर ने भी ब्रह्म को माया के खसम के रूप में चित्रित किया है।

"एके पुरूष, एक है नारी, ताकर करहु विचारा।"

कबीर साहब जी ने माया को परिवर्तनशील माना है। वह उत्पन्न तथा नष्ट होती रहती है। इसी भ्रम का शिकार होने के कारण जीव ईश्वर से विमुख हो जाता है। और वह आवागमन के चक्कर में पड़कर दुख भोगता रहता है। माया सभी को दुख देती है। स्वयं कबीर साहब भी उस माया से बहुत दुखी है। जीव सदैव मोर–मोर की समस्या से छुटकारा प्राप्त कर सकता है। और यह मुक्ति राम की शरण में जाने पर ही प्राप्त होती है। परन्तु पाया के बंधन में बंधा मानव हमेशा अपने बारे में सोचता है। तथा परमात्मा से विमुख रहता है। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए इस माया रूपी ममता को त्यागना पड़ता है। कबीर साहब जी कहते भी है–

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।

इसलिए एक सच्चे ज्ञानी को माया को छोड़ना पड़ता है। माया का निवास तो पाखंडियों के पास है। कबीर साहब जी माया को कहते हैं कि वहां जाओं जहां बाह्याडंबर है तथा भक्त लोग चंदन घिसकर टीका लगाते हैं। कबीर साहब जी भक्तों को भी माया से बचने का उपाय बताते हैं।

"औधा घड़ा न जल में डूबे, सूधा सूभर भरिया

जाकौ यह जग घिन करि चालै, ना प्रसादि निस्तरिया"

जगत संबंधी विचार – कबीर साहब ने अद्वैतवादियों के सम्मान ब्रह्म को सत्य तथा जगत को मिथ्या माना है। वे बार–2 संसार की सता को नश्वर कहते हैं। कबीर जी संसार को बाजीगर का खेल कहते हैं। उनके अनुसार यह भ्रामक है। जैसा दिखाई देता है वैसा है नहीं।

जो दिसें सो तो है नाहिं, है सो कहा न जाई।

वे संसार के मिथ्या भाव को प्रकट करने के लिए उसे सेमल का फूल, आकाश निलिमा, धुंआ–धरोहर आदि कहते हैं। वे स्पष्ट करते है।

'यहुं ऐसा संसार है, ज्यो सेमल का फूल,

दिन दस के व्यवहार में झूठे रंग न भूल"

प्रायः मानव के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ। कबीर साहब भी सृष्टि को देखकर उसके रहस्य को जानना चाहते हैं। एक स्थल पर वे अपनी जिज्ञासा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं।

"कहौ भइया अम्बर कासूं लागा।

कोई जानेगा जाननहार स भागा।

अंबर दीसै केता तारा।

कौन चतुर ऐसा चितरन हारा।"

कबीर ने सृष्टि की उत्पति और लय का कारण परमात्मा को माना है। परन्तु उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया कि सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई तथा किस क्रम से हुई। यह जिज्ञासा होने पर भी कबीर साहब संसार को रहस्यमय घोषित करते हैं। परन्तु उन्हें यह अहसास भी होता है कि सृष्टि में कोई अव्यक्त सता निवास करती है।

"जो तुम देखा सो यहु नांहिी यहु पद अगम अगोचर मांही

कहैं कबीर जे अंबर जाने ताही सूं मेरा मन मानै।।"

कबीर साहब जी कहते हैं कि मैने अपनी इन दो आंखों से संसार को देखने का प्रयास किया है। लेकिन मुझे प्रभु के सिवाय कुछ भी नजर नहीं आया। मेरे नेत्र उसी प्रभु के रंग में रंग गए है। इस प्रकार कबीर के विचारानुसार संपूर्ण सृष्टि उस अलौकिक नटवर की लीला है। उस परमात्मा ने कहने सुनने के लिए इस संसार की रचना की है। वह स्वयं इसमें छिपा है। पर वह दिखाई नहीं देता। सत, रज तथा तम के योग से इसने संसार की रचना की है। तथा अपने को उसमें छिपा रखा है। वह स्वयं तो आनंद रूप है। तथा यह संसार उस आनंदरूप पल्लव रूपी गुणों का विस्तार है। पांच तत्व उसकी शाखाएँ है। राम–नाम उसका सुंदर फल है। जो व्यक्ति संसार

के इस रहस्य को जान लेता है। उसके लिए संसार आनंददायक है।

कहन सुनन को जिहि जग कीन्हा। जग भुलान सो किनहुं चीन्हा

सत रज तम थै कीन्हीं माया। आपण माझै आप छिपाया

ते तौ आहि आनंद सरूपा। गुन पल्लव–विस्तार अनूपा

साखा तत थैं कुसुम गियानों। फल सो आछा राम का नामां।

पीछे बताया जा चुका है कि सृष्टि के बारे में कबीर साहब के विचार वेदांत तथा सांख्य दर्शनों से प्रभावित है। लेकिन एकाध स्थल पर वे सूफी तथा इस्लाम की धारा से भी प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। कबीर एक स्थल पर कहते हैं कि अल्लाह ने नूर से सृष्टि बनाई है। यह निश्चय से सूफी प्रभाव है। परन्तु यह भी सच्चाई है कि सूफी मत कुछ सीमा तक वेदांत से प्रभावित है। उपनिषदों में भी स्वीकार किया गया है कि ज्योति से सृष्टि की उत्पति हुई है। फिर भी हमें यह मानकर चलना होगा की कबीर साहब एक जनकवि थे और उन्होंने जन साधारण की दृष्टि से ही जगत के बारे में अस्थिर मानते हैं। वे कहते भी है।

"रामां बिनां संसार धुंध कुहेरा,

सिरि प्रगटया जंम का फेरा।"

जीव तत्व संबंधी विचार

कबीर साहब ने परमतत्व की चर्चा करते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि उसके अतिरिक्त और कोई तत्व नहीं हैं। अतः 'जीवात्मा' नामक तत्व भी उसी में समाहित हो जाता है। वे तो स्पष्ट कहते हैं कि हरि में पिंड है और इस पिंड में हरि है और वही सब में है तथा निरंतर विद्यमान है। शरीर के भीतर समझी जाने वाली आत्मा तत्व के बारे में वे कहते हैं कि न तो यह मनुष्य है, न देव है, न योगी, न यती है, न अवद्यूत है, न माता है, न गृहस्थी है, न आदमी है, न राजा, न रंक न ब्राह्मण, न बढ़ई है, न तपस्वी और न शेख है।

ना इहु मानुस ना इहु देउ नाइगु जति कहावै सेउ।

न इहु जोगी न अवधूता, नाइहु माइ न काहू पूता।।

कबीर साहब इसे उस राम का केवल एक अंश मानते हैं। यह उसी प्रकार नहीं मिट सकता जैसे कागज के ऊपर से स्याही का चिटू नहीं मिटता। कभी–कभी लगता है कि कबीर का ब्रह्म तथा आत्मा एक ही है। कुंभ के रूपक द्वारा उन्होनें यह सिद्ध किया है कि आत्मा शरीर–बंद होने के कारण ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होने लगती है। यह अलग नहीं।

"जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी

फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तय कथ्यो ग्यानी।।

कबीर आत्मा को जीव, प्राण, दीपक की ज्योति, अद्वैती तत्व, निरंजन, ज्ञान स्वरूप, स्वयं प्रकाश चेतन रूप आदि मानते हैं। जो लक्षण उन्होंने ब्रह्म के दिए है। वही आत्मा के दिए है। वे कहते हैं–

"मंदिर मांहि झपूकती दीवा केसी जोति।

हंस बटाऊ चलि गया काढौ घर की छोति।।

अथवा अबरन एक अलक अविनाशी घट–घट आप रहें–कह कर के आत्मा को परमात्मा मान लेते है। यह

आत्मा को कभी अमर मानते हैं तो कभी ब्रह्म के समान मानते हैं। क्योंकि ब्रह्म आनंद स्वरूप है। अतः आत्मा भी आनंद स्वरूप है। वह भी अनादि और सनातन है। मुल्ला द्वारा जीव हत्या की चर्चा करते हुए वे कहते है कि इस ज्योति स्वरूप आत्मा का हनन नहीं हो सकता।

पकरि जीउ आन्या देह निवासी माटी को विसमल किया

ज्योति सरूप अनाहत लागै कहु हलालु क्यों किया।।

इस प्रकार कबीर साहब ने आत्मा के जिस स्वरूप का वर्णन किया है, वह भारतीय वेदांत परंपरा के अनुसार है। अद्वैतवादी के समान वे भी आत्मा को प्रकाश रूप मानते हैं। इस संदर्भ में कबीरराम जी कहते हैं कि लोग आत्मा–परमात्मा को अलग–अलग मानते हैं उनकी बुद्धि मोटी है। और वे नरक के अधिकारी हैं। वे तो आत्मा–परमात्मा में अंश–अंशी संबंध को स्वीकार करते हैं। इस संबंध में वे कहते भी हैं।

"हेरत हेरत हे सखी, रह्म कबीर हिराइ,

बूंद समानी समद मैं सो कह हेरी जाइ।।

हेरत हेरत हे सखी, रह्म कबीर हिराइ

समंद समाना बूँद में, सो कत हेरया जाइ।।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर के दार्शनिक विचार वेदों, उपनिषदों आदि से प्रभावित है। दर्शन के क्षेत्र में उनका चिंतन पूर्णतया भारतीय है। इस पर किसी विदेशी विचार–धारा का प्रभाव नहीं है। वे आत्मा–परमात्मा को एक ही मानते थे।

लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।

लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।

10. कबीर की भक्ति भावना

कबीर द्वारा विभिन्न प्रसंगों में व्यक्त उपदेशात्मक विचारों से, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे धार्मिक नेता, ज्ञानमार्गी, दार्शनिक, रहस्यवादी, गृहस्थ संन्यासी, विशुद्ध भक्त या क्या थे? यदि तर्क की दृष्टि से विचार करें तो पाएँगे कि कबीर इनमें से किसी एकमात्र विशेषणं या पद के अधिकारी नहीं बल्कि सब कुछ थे अथवा इन सबके समन्वित व्यक्तित्व थे। उनके लिए उनमें से कोई भी एक साँचा इतना पर्याप्त नहीं है कि उसमें कबीर को सीमित किया जा सके तथापि सब मिलाकर वे एक भक्त के रूप में ही अधिक स्पष्ट हैं।

कबीर अपने चतुर्दिक व्याप्त भक्ति के नवोन्मेष की उपज हैं और भक्तिकाल तो उनकी देन अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे जिस वातावरण में अवतरित हुए, पले और कर्मरत हुए, वह काशी का भक्तिमूलक परिवेश था। उस समय भक्ति की लहर ने बौद्ध, जैन, नाथपंथ, वारकरी संप्रदाय, सूफीसंप्रदाय तथा तत्कालीन अन्याय साधना संप्रदायों को अपने प्रभाव से अभिभूत कर लिया था। यह भक्ति मूलतः भारत के नायमारों (शिवभक्तों) और आलवारों (वैष्णव भक्तों) की देन दी जो अंशतः रामानुज द्वारा ही उत्तर–भारत में लाई गयी थी परन्तु कबीर ने उसका श्रेय अपने गुरु रामानन्द को ही दिया था।

कबीर की भक्ति साधना जैनों और नाथसिद्धों की भाँति आचार की शुद्धता पर अधिक बल देती है। जहाँ तक आत्मज्ञान की आवश्यकता, मनोमारण, भक्ति में शूर की भावना, आचारहीन ज्ञान का निषेध, निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करते हुए भी उससे एकान्तिक प्रेम की अनुभूति, गुरु का महत्व–प्रतिपादन, कर्मवाद और पुनर्जन्मवाद का समर्थन, सदाचार की महत्ता का आख्यान, पाखंडरत साधकों की निंदा, कथनी एवं करनी में सामंजस्य, शून्य में निरंजन को पाने की कल्पना, कायक्लेश विहीन योगाचारों में विश्वास, वाद–विवाद से परे रहने की प्रवृत्ति, मूर्तिपूजा का खंडन, जातिगत भेद–भावों से घृणा, व्रत–तीर्थाटन तथा वैद्यी परंपरानुमोदित साधना में अविश्वास, भक्ति–भजन का उपदेश, सत्संग की महत्ता का प्रतिपादन, नारी–निन्दा, जीवहत्या–निषेध, असत्यभाषण की निन्दा, सूक्ष्म या 'सूषम' वेद की दुहाई, वेदपाठी पंडित के थोथे ज्ञान का पर्दाफाश, घटतीर्थ की चर्चा, आदि की बातें हैं। संत कबीर नाथ परम्परा तथा उस समय के अधिकांश साधना संप्रदायों की एक जीवन्त कड़ी हैं। कबीर के साहित्य में वर्णित योग साधना की प्रक्रिया और अनुभूति का विशद चित्रण, नाड़ी चक्र, सुरति–निरति और ब्रह्मरन्ध्र, आदि की बातें उन्हें विशुद्ध भक्त मानने में बाधक हैं। फिर भी उनकी रचना में प्रेमतत्त्व, पति–पत्नी, सेवक–सेवा, पिता–पुत्र, आदि सम्बन्धों से सम्बद्ध जो रहस्य संकेतित है, वह उन्हें किसी भी सगुण भक्त की कोटि में रखने के लिए पर्याप्त सबल प्रमाण है। इसलिए कबीर साहब की गणना हिन्दी के उन मूर्धन्य कवियों में की जाती है, जिनके सम्बन्ध में कहा जाता है–

> "कीरति भनिति भूति भलि सोई।
> सुरसरि सम सब कह हित होई।"

कबीर की भक्ति–भावना

कबीर की भक्ति भी कुछ ऐसी थी कि उसे किसी प्रचलित पारिभाषिक शब्दावली से पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता। कबीर साहब के समय में सिद्ध, नाथ और जैन संप्रदाय के भक्त और साधकों की बानियाँ और उपासना

की पद्धतियाँ थीं। नाथ–संप्रदाय को छोड़कर अन्य दोनों पन्थ मुख्यतः अनीश्वरवादी कहे जा सकते हैं। कम–से–कम उनके ईश्वर का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु सूक्ष्म और परोक्ष रूप से देवत्व का आरोप किया जाने लगा था और साधना के द्वारा जिस महासुख की कल्पना की गयी थी वह बहुत कुछ उसी प्रकार का अनिर्वचनीय और अलौकिक था जैसा निर्गुण ईश्वर का वर्णन किया जाता है। नाथ–संप्रदाय चाहे शैव हो या बौद्ध, किंतु शैव होते हुए भी उसमें किसी शरीरी और गुण विशेष शक्ति की कल्पना नहीं की गयी थी) इनका मार्ग साधना और शारीरिक क्रिया का था और समाधि की अवस्था में योगी दिव्य सुख की प्राप्ति करता था और यही उसकी चरम प्राप्ति थी। कबीर आरम्भ में संप्रदायों से बहुत अधिक प्रभावित थे, किन्तु अनुभव और ज्ञान की परिपक्वता के साथ उन्हें यह मार्ग अपूर्ण प्रतीत हुआ। रामानन्द की यह दीक्षा वह ले ही चुके थे। प्रपन्नभाव विशिष्ट भक्ति की ओर वह आकृष्ट हुए।

कबीर साहब की भक्ति इस प्रकार एक विचित्र भक्ति थी। निर्गुण ब्रह्म की प्रतीति प्रायः ज्ञान के द्वारा ही की जाती रही है। तर्क ही उसका आधार है और बुद्धि वह ताखा अस्त्र है जिसके द्वारा सृष्टि के सत्य का उद्घाटन बाह्य सत्य की परतों को हटाकर सूक्ष्म तत्त्व के दर्शन द्वारा किया जाता है निर्गुण ब्रह्म के उपासकों को हम अद्वैतवादी और वेदान्तवादी भी कह सकते हैं, क्योंकि इसी के अन्तर्गत जीव और ब्रह्म की एकता का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है और जीव तथा ब्रह्म ऐक्य में ही इहलौकिक जीवन की सार्थकता मानी गयी है। कबीर साहब इसी निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे, इसलिए उन्हें ज्ञानमार्गी संज्ञा से अभिहित किया जाता है। उन्होंने सगुणवाद, अवतारवाद और मूर्ति–पूजा, आदि को सर्वथा त्याज्य बताया और केवल निर्गुण ब्रह्म की सत्ता को ही स्वीकार किया। निर्गुण और सगुण ब्रह्म के रस भेद को तथा अपने मन के औचित्य को प्रतिपादित करने के लिए कबीर को तर्क और बुद्धि का सहारा लेना पड़ा। उन्होंने ज्ञान को इस सत्य की प्राप्ति के लिए उपयोगी माना। कबीर ने ज्ञान और धर्म को एक–दूसरे से अन्योन्याश्रित माना है। कबीर साहब ऐसा सोचते हैं कि ज्ञान के द्वारा ही भ्रम, अन्धविश्वास और निरर्थक कर्मकाण्ड की मोटी तहों को छेदकर धर्म के सच्चे रूप को पहचानने की अन्तर्दृष्टि आती है। वास्तविक माया तो यही सब अज्ञानमूलक अन्धविश्वास ही है। मोह, तृष्णा, स्वार्थ सभी प्रकार के मन के कल्मष को दूर करने के लिए इसी ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश में ही मन का पंकज प्रफुल्लित होता है–

सन्तो भाई आई ज्ञान की आँधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उडाँणी, माया रहै न बाँधी।
हित चित की द्वै थुनी गिरानी, मोह बलींडा टूटा।
त्रिस्नाँ छानि परी घर ऊपर, कुबुधि का भाँडा फूटा।
जोग जुगति करि सन्तो बाँधी, निरचू चुबै न पाँणी।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति सब जाणी।
आँधी पीछे जो जल बूठा, प्रेम–हरि जन भीना।
कहैं कबीर मान के प्रगटे, उदित भया तम पीना।

इस प्रसंग में यह भी द्रष्टव्य है कि ज्ञान की यह आँधी भक्ति रूपी जल–वर्षा के पहले की भूमिका है, प्रायः ऐसा देखने में आता है कि आँधी के बाद पानी आता है। कबीर मानते हैं कि इसी प्रकार ज्ञानोदय के पश्चात् ही ईश्वर के प्रति सच्चे, अहैतुक प्रेम का प्रादुर्भाव होता है। कबीर साहब के निर्गुण उपासक होने के नाते और ज्ञान का अवलम्बन लेने के कारण कबीर को ज्ञानमार्गी कहने वाले व्यक्तियों के मन का भ्रम इन पंक्तियों से मिट जाना चाहिए। ज्ञान की सहायता से मन को निर्मल करके भगवत्–प्रेम की प्राप्ति ही कबीर का लक्ष्य था।

कबीर की भक्ति का स्वरूप

कबीर साहब के ज्ञानवाद की सार्थकता जीवन के सत्य को पहचानने में थी। वह सत्य चाहे निर्गुण–राम–सम्बन्धी सत्य हो अथवा उसकी प्राप्ति के साधनों के सम्बन्ध में। उस निर्गुण राम को पाने के लिए कबीर ने भक्ति को सबसे अधिक उपयुक्त माना। भक्ति में विश्वास, निष्कपट आस्था, हृदय का सम्पूर्ण समर्पण और बुद्धि के सबल आश्रय को छोड़कर भावना के सूक्ष्म और वायवी आलम्बन को ग्रहण करना पड़ता है। ऊपर से इसमें अन्तर्विरोध भले ही प्रकट हो, किन्तु व्यवहार में यह सर्वथा युक्तिसंगत है। ज्ञान का प्रकाश जिस सीमा पर पहुंचकर धुंधला और मलिन हो जाता है, वहीं से भक्ति का आलोक अपने रहस्य की कुहेलिका का अन्तर्द्वार खोलता है। ज्ञान के चरम सीमान्त पर ही भक्ति का आविर्भाव होता है और उसके नये लोक की वह परिधि आरम्भ होती है जो उस अनन्त का स्पर्श करती है जिसके आगे राह नहीं। अतः कबीर की यह भक्ति उनके ज्ञानवाद और योगानुभूति की सहज और स्वाभाविक परिणति के रूप में आती है। योग और ज्ञान दोनों स्वानुभूति को वाहन बनाकर भक्ति की निष्पति पर पहुँचते हैं। उसमें वैयक्तिकता की छाप होना अनिवार्य है। इसमें किसी बाह्य उपकरण की सहायता की आवश्यकता नहीं। अतः कबीर की भक्ति दूसरी प्रकार की भक्तिवादी धाराओं से भिन्न थी। सगुण भक्ति और कबीर की भक्ति में मौलिक अन्तर यही था कि पहली भक्ति जहाँ वेद, शास्त्र और पुराणों की सम्पत्ति और समर्थन की मुहर लगाकर जनता में आविर्भूत हुई थी, वहाँ कबीर की भक्ति इनकी सर्वथा उपेक्षा कर व्यक्ति–मानस को ही बाह्य और साधन मानकर चली थी। व्यक्ति का मानस ही माया और भ्रम के मल से मलिन होकर मोहलिप्त मनुष्य के आचरण और व्यक्तित्व का आधार बनता है, किन्तु वही मानस यदि इन विकारों और अस्वाभाविक संस्कारों से मुक्त होकर निर्मल हो जाता है तो उसमें अनायास राम का प्रतिबिम्ब अपने–आप प्रतिफलित हो जाता है। इस प्रकार भक्त और भगवान एकमय हो जाते हैं, सारा द्वित्व मिट जाता है और जीवन अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति करता है। कबीर साहब ने मन को निर्मल करने के लिए और उसके सब विकारों के उन्मूलन के लिए प्रेम को सबसे आवश्यक तत्त्व माना। कबीर साहब की भक्ति का स्वरूप इस प्रेम तत्त्व से बहुत ही अधिक प्रभावित हुआ। अतः हम आचार्य द्विवेदी जी के पूर्वोक्त कथन को इस रूप में भी उपस्थित कर सकते हैं कि कबीर की भक्ति वह लता है जो योग–क्षेत्र में प्रेम का बीज पड़ने से अंकुरित हुई और जिसका विकास स्वानुभूति का अवलम्बन पाकर हुआ।

कबीर साहब की भक्ति वैष्णवी भक्ति के समीप रहते हुए भी वही नहीं थी। ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर साहब अन्य प्रकार के भक्तों और साधकों में वैष्णव भक्त को सबसे अधिक अपने समीप महसूस करते थे। शाक्तों की तुलना में तो उन्होंने वैष्णवों के प्रति अपना झुकाव और समर्थन बहुत स्पष्ट रूप से दिखाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर के समय वैसे तो बहुत से सम्प्रदाय और भक्ति–सम्बन्धी मार्ग रहे होंगे, किन्तु साधना और विचारों के मौलिक आधार पर उन्हें मोटे तौर पर इन्हीं दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। मर्यादित आचार के आधार पर जितने भी साधना और भक्ति के सम्प्रदाय थे, वे सभी वैष्णव कहे जा सकते हैं तथा ऐसे सब मार्ग, जिनमें आचार और मूल्यों को दूसरा आधार माना गया था, जिसे हम 'वाममार्ग' भी कहते हैं, वह शाक्त धर्म के अन्दर स्वीकृत रहा होगा। कबीर साहब स्वयं अपने को वैष्णव धर्म के अन्तर्गत गिनते थे, नहीं तो उनकी इन उक्तियों के कहने का कोई आशय नहीं–

वैष्णव की कूकरी भल, साकत की बुरी माई।

ओह सुनहि हरिनाम जस, वह पाप बिसाहन जाइ।।

साकत संग न कीजिये, दूरहि जाइए भाग।

वासन कारो परहिए, तक कछु लागै दाग।।

कबीर संगति साध की. दिन दिन दना हेत।

साकत कारी कोबरी, धोए होई न सेत।।
कबीर साकत ऐसा है, जैसा लसन की खान।
कौने बैठे खाइए, परगट होय निदान।
चंदन की चुटकी भली, नाँ बँबूर उबराँउ।
वैश्नौं की छपरी भली, नाँ सोषत कर बड़ गाउं।
साषत बाँभण मनि मिले, बैसनो मिले चडाल।
अंकमाल दे भेटिये, मानौ मिलै गोपाल।।

शाक्तों की उपमा उन्होंने कुत्तों से दी है। कुत्ते को स्मृति और वेद का उपेदश करना जिस प्रकार व्यर्थ है, उसी प्रकार शाक्त के सम्मुख राम का नाम लेना। अतः इससे अच्छा यही है कि उसे राम नाम न सुनाया जाये। शाक्त का स्वभाव ही है निन्दा करना।

रॉम रॉम रॉम रमि रहिये। साषित सेती भूलि न कहिये।।
का सुनहाँ को सुनाएँ। का साषित पै हरि गुन गाएँ।।
का कऊवा को कपूर खवाए। का विसहर को दूध पिलाए।।
साषित सनहा दोनों भाई। वो नीदै वो भौकत जाई।।
अमृत लें ले नीब स्यँचाई। कहै कबीर वाकी बानि न जाई।।

कबीर उस माता की सराहना करते हैं जिसने वैष्णव पुत्र को जन्म दिया–

कबीर धनि ते सुन्दरी, जिनि जना बैसनों पूत।
राम सुमिरि निरभै, सब जग गया अऊत।।

कबीर साहब की भक्ति में यद्यपि वेद, शास्त्र और पुराणानुमोदित विचारों को ही ग्रहण नहीं किया गया है, उस भारतीय चिन्ता को और जीवन के मूल्यों को भी, जिनका प्रतिपादन प्राचीन काल से होता आया है, कबीर ने स्वीकार किया है। भक्ति जीवन का ऐसा दर्शन है जिसका उद्‌भव साधक के व्यक्तित्व और आचरण से होता है। भगवद्‌भक्ति के अर्जन के लिए मनुष्य को अपने अन्तर को सर्वथा निष्कलुष और पवित्र बनाना पड़ता है। हृदय के केन्द्रस्थ मूल भाव के ईश्वरोन्मुख हो जाने के बाद मनुष्य का सारा व्यक्तित्व इस प्रकार उसमें ओत–प्रोत हो जाता है कि उसका कार्य उसी से प्रतिफलित और संचालित होता है। अन्तर्जगत् और बर्हिजगत के इस पूर्व सामंजस्य के बिना भक्ति का सच्चा विकास असंभव है। सर्वथा निःसंग होकर, सभी प्रकार के स्वार्थ, इच्छा को त्यागकर, स्वयं अपने को सर्वथा भूलकर, मिटाकर भगवान के साथ एकात्मक होना ही भक्त का लक्ष्य होता है।

जहाँ इस प्रकार की अहैतुकी और निष्ठ भक्ति की साधना होती है, वहाँ जीवन में किसी भी कार्य और आचार में वासना और कलुष का होना सम्भव नहीं है। आचार और भक्ति–भावना के ही आधार पर हमारे यहाँ रागानुगी और वैधी दो प्रकार की भक्ति मानी गयी है। कृष्णभक्त कवियों की भक्ति को रागानुगी और रामभक्ति को वैधी कहा गया है, किन्तु अहैतुकी भक्ति दोनों की है। जहाँ पर भक्ति का निष्काम और अहैतुक रूप उपस्थित है वहाँ साधना के मूल रूप में अन्तर नहीं पड़ सकता, उसका दार्शनिक तथा सैद्धान्तिक परिधान भले ही भिन्न हो । कबीर साहब उसी बृहत्तर भक्तिवादी आंदोलन के एक अंग थे जो हृदय के माध्यम से आचार के संयम और पवित्रता को

सँजोकर भगवतकृपा का आकांक्षी और प्रार्थी था। ऐसे भक्तों की सबसे बड़ी कामना, यदि इसे हम सांसारिक अर्थ में कामना कह सकते हैं तो यही कि भगवदरूप में विलीन हो जाना है। स्वर्ग और बैकुण्ठ को तो वे केवल भक्त को अपने लक्ष्य से विरत करने वाला प्रलोभन मानते थे। कबीर तो राम और अपने को सर्वथा एक ही समझते थे इसीलिए राम की तारनतरन उपाधि उन्हें पसन्द नहीं। उस उपाधि का तो यह हुआ कि भगवान तारने वाला है और भक्त तरने वाला है। तरने के बाद भी भक्त का भगवान से पार्थक्य बना रहेगा। इस तरह की कृपा की कबीर को क्या जरूरत? इसलिए वह अपने राम से व्यंग्यात्मक ढंग से पूछते हैं कि हे राम, भला हमें तारकर कहाँ भेजोगे? उस तुम्हारे बैकुण्ठ का कैसा रूप है जो तुम मुझे तारने के बाद कृपा कर दोगे? जब तुम इस समस्त सृष्टि में अद्वैत भाव से रमे हुए हो तो मुझे क्यों भ्रम में डाल रहे हो? तुम मुक्त मुझे उसी हालत में बना सकते हो तब अपने को मुझसे पृथक समझते हो। कबीर साहब की यही निष्काम भक्ति और निष्काम आचरण की प्रवृत्ति थी कि उन्होंने अपने को वैष्णव धर्म का एक अनुयायी और अंग समझा। राम और भक्त में जब यह एकात्मकता स्थापित हो जाती है तो यह आध्यात्मिक जगत की एकात्मक स्थिति उसके आचरण में अपने आप उतर जाती है। जैसा पहले कहा जा चुका है, भक्त के अन्तर्जगत् और बाह्य जगत में पूर्णतः एकरूपता स्थापित हो जाती है। कबीर साहब अपने को वैष्णव ही नहीं, हिन्दू होना भी घोषित करते हैं। मुसलमानों के जीवन और धर्म में उन्हें यह एकरूपता और संगति नहीं मिली। इसी कारण वह घोषित करते हैं कि सबको हिन्दू रहना चाहिए—

काजी त कौन कतेब बखानी।

पढ़त गुनत ऐसे सब मारे, किनहूँ खबरि न जानी।

सकति सनेह करि सुनति करिया मैं न बदोंगा भाई।

जो से खुदाई मोहे तुरुक करेगा, आपन ही कटि जाई।

सुमति करे तुरुक जो होइगा, औरत का क्या करिए।

अर्ध सरीरी नारिन छोड़े, ताते हिन्दू रहिए।

छाँड़ि कतेल राम भजि बौरे, जुलुम करत है भारी।

कबीर चकरौ टेक राम की, तुरक रहे पचि हारी।।

कबीर इसीलिए राम का पल्ला पकड़े हुए हैं और सब तुर्क निराश होकर उनकी ओर देख रहे हैं, किन्तु उनको भी वह उपदेश दे रहे हैं कि व्यर्थ कुरान किताब का भ्रम छोड़कर राम का भजन करो।

प्रेम भक्ति

कबीर की भक्ति में उपर्युक्त सामाजिक बातों पर तो बल है ही, किन्तु उससे अधिक बल, भगवान से प्रेम पर है। यों आगे हम देखेंगे कि भक्ति के अन्य रूप भी उनके काव्य में पूर्णतया नहीं हैं, किन्तु इस पर बल काफी है। मुसलमानी धर्म और उनके दर्शन से परिचित लोगों के लिए यह अज्ञान नहीं है कि वहाँ खुदा और आदमी के बीच का रिश्ता भय का है। कुरान में इस बात को बार—बार दुहराया गया है। खुदा एक शासक है। इस्लामिक कोष (डिक्शनरी ऑफ इस्लाम) में स्टेनली लेनपोल ने स्पष्ट शब्दों में इसे (दि फीयर रादर दैन दि लव ऑफ गाड इज स्यर टु इस्लाम) स्वीकार किया है। दूसरी और तुलसी, आदि में यह सम्बन्ध स्वामीसेवक का है। कबीर के अन्य सम्बन्धों के संकेत तो हैं किन्तु प्रमुखतः उनमें प्रेम का सम्बन्ध है। उन्होंने अपनी भक्ति को कहीं—कहीं प्रेम—भक्ति कहा भी है

प्रेम भगति ऐसी कीजिए मुखि अमृत बरिषे चंद।

इस प्रेम—भक्ति के कारण ही उन्होंने अपने को पत्नी और भगवान को पति माना है और तरह—तरह से प्रेम,

बिरह या मिलन के भावों की अभिव्यक्ति की है।

नवधा भक्ति– भगवान में भक्ति के नौ भेद किये गये हैं

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं बंदनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्।

स्मरण–मेरा मन सुमरै राम कुँ, मेरा मन रामहिं आहि।

भक्तों के सामान्य 'स्मरण' या 'नाम जपने से कबीर का स्मरण भिन्न है। यहाँ कबीर का उस भावपूर्ण स्मरण से अभिप्राय है जिसमें डूबकर स्मरणकर्ता स्वयं 'राम' या 'भगवान' बन जाता है। साथ ही उनका 'स्मरण' या 'सुमिरण' बहुत पूर्ण है–

सुरति समांणी निरति में अजपा माहे जाप।

कीर्तन–"कबीर सूता क्या करै, गुण गोविन्द के गाइ।" कबीर का कीर्तन भी सामान्य नहीं है। ज्यों–ज्यों गुणों को याद करके वे कीर्तन करते हैं, उन्हें एक तीर–सा लगता है, अर्थात् विरह की अनुभूति होती है

ज्यूं ज्यूं हरि गुण सांभणूं त्यूं त्यूं लागै तीर।

श्रवण–"सबद सुनत जिव नीकल्या भूलि गयी सब देख।" कबीर भगवान के नाम या गुण, आदि के श्रवण के समय अपनी सुध–बुध देते हैं

वाहु वाहु क्या खूब गाता है। हरि का नाम मेरे मन भावता है।

वंदन–माया के बंधन से छूटने के लिए वंदना करते हैं

माधौ कब करिहौ दाया।

काम क्रोध अहंकार व्यापै ना छूटे माया।

अर्चन–कबीर का अर्चन भी अपने ही ढंग का है। वे कहते हैं

देवह माहै देहुरी तिल जैसे विसतार।

माहें पाती माहि जल, माहै पूजणहार।

दास्य–जो सुख प्रभु गोविन्द की सेवा, सो सुख राजन लहिये।

या

कबीर का स्वामी गरीबनिवाज।

पादसेवन–राम चरन मनि भाणे रे।

या

चरन कमल मन मांतियचा और न भावे मोहि रे।

आत्मनिवेदन

कबीर कुत्ता राम का मुतिया मेरा नाउँ।

गले राम की जेवड़ी जित खैचे तित जाउँ।

तो तो करै त बाहुड़ो, दुरि करै तो जाउँ ।

ज्यूँ हरि राखे त्यूँ रहौं, जो देवे सो खाउँ।

इस प्रकार से नवधा भक्ति के अधिकांश रूप कबीर में मिल जाते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि तुलसी आदि सगुण भक्तों से इनकी भक्ति इस बात में भिन्न है कि वह बाह्याचार, पूजा, उपासना या कर्मकांडीय भक्ति न होकर 'भाव भगति' है। उसके लिए जल, फूल, चंदन, आदि बाह्य उपकरणों की जरूरत नहीं। इस रूप में कबीर ने भक्ति या अपनी भक्ति को 'भाव–भगति' ठीक ही कहा है–

भाव भगति विसवास बिन कटे न संसे भूल ।

कबीर ने अपने उपदेशों में कथनी–करनी के सामंजस्य पर सर्वत्र बल दिया है। कबीर की भक्ति–साधना में तीर्थ–व्रत, मूर्तिपूजा, संप्रदाय प्रवर्तन, कान–फूंककर या मंत्र देकर शिष्यों को दीक्षित करना, मठों–मंदिरों एवं गद्दियों, अखाड़ों की स्थापना, मेलों का आयोजन, किसी प्रकार का भेदभाव, परिग्रह, अहंकार, तृष्णा, स्वांग या भेषधारण, टंट–घंट तथा बाह्याडंबर, कर्त्तव्य–विमुख होकर संन्यास ग्रहण, स्वार्थप्रेरित बैराग्य का स्वांग, प्रेम–भूतादि सम्बन्धी कर्मकाण्ड, आदि का कोई स्थान नहीं है। उन्होंने इस प्रकार के आचरणों की जमकर निन्दा की है। वे 'लिप्त में अलिप्त', 'माया में राम', 'संग्रह में त्याग' 'माया मधि (मध्य) जीवन', वैदिक तथा लौकिक विधि–निषेधों का देश–कालानुसार संग्रह या ग्रहण जैसे मध्य मार्ग के समर्थक और प्रचारक थे। उन्हें अतिरेकों के बीच श्रेयस्कर बातों का चयन ही काम्य प्रतीत होता था। उनका रास्ता लोक–वेद, हिन्दू–मुसलमान, ज्ञान–भक्ति, गृहस्थ–वैराग्य, कर्म–अकर्म, निर्गुण–सगुण के बीच का कोई तीसरा ही रास्ता था जिस पर वे जनता को ले जाना चाहते थे। कबीर साहब की भक्ति में प्रेम का तत्त्व मूलतः अन्तर्निहित था। अतः उनकी भक्ति में इसका गहरा रंग है।